फतेहपुर वाली भाभी

डॉ. सूरज मृदुल

फतेहपुर वाली भाभी

(कहानी-संग्रह)

फतेहपुर वाली भाभी

(कहानी-संग्रह)

डॉ. सूरज मृदुल

चन्द्रमुखी प्रकाशन
दिल्ली-110053

ISBN : 81-86625-22-4

प्रकाशक : चन्द्रमुखी प्रकाशन
ई-578, मेन रोड, जगजीत नगर,
दिल्ली-110053, फोन—2853283

© : डॉ. सूरज मृदुल

शब्द-संयोजन : एस॰ के॰ कम्प्यूटर्स, शाहदरा, दिल्ली-32

मुद्रक : आर॰ के॰ ऑफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

FATEHPURWALI BHABHI by Dr. Suraj Mridul

Rs. 140.00

जिनकी गोद का स्नेहिल स्पर्श
मुझे शारीरिक
एवं
बौद्धिक विकास प्रदान कर
इस योग्य बनाया,
उन माताश्री
एवं
पिताश्री को।

भूमिका

कोई भी रचनाकार जब समाज में फैले भ्रष्टाचार, अन्याय, पाशविकता, मानवताहीन आचरण और विडंबनाओं को देखता-परखता और महसूस करता है। तो उसके हृदय में एक अकुलाहट पैदा होती है और उसकी लेखनी किसी न किसी रचना को जन्म देने के लिए चल पड़ती है। वैसे तो साहित्य में कहानी, कविता, उपन्यास एवं हास्य-व्यंग्य—किसी भी विधा में हृदय की अकुलाहट को उकेरा जा सकता है परन्तु इन सभी विधाओं में कहानी इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी है कि इसके माध्यम से अपनी अनुभूति को सहज ही पाठक की अनुभूति बनाया जा सकता है।

डॉ. सूरज मृदुल उन रचनाकारों में से हैं जो सामाजिक बुराइयों को देखने, महसूस करने के बाद चुप बैठे नहीं रह सकते और अपने पाठकों तक उसे पहुँचाने में बड़ी ही सरल, सहज और प्रवाहमयी भाषा-शैली का सहारा लेते हैं तथा पाठकों को सामाजिक बुराइयों का अहसास करा देते हैं। 'फतेहपुर वाली भाभी' कहानी-संग्रह इन्हीं सामाजिक विडंबनाओं का एक ऐसा जंगल है, जिसमें प्रवेश कर आप स्वयं उन्हें उखाड़ने को उद्यत हो जाएँगे।

डॉ. सूरज मृदुल ने जिस विच्छिन्न समाज की परत-दर-परत उधेड़ने का काम, अपने कंधों पर ले रखा है, वह स्वयं में विच्छृंखलित है। उसे ऐसी ही भाषा की दरकार है। डॉ. मृदुल के पास वह सामर्थ्य है। कथ्य के अनुरूप शैली का चयन एवं भाषा को असहज न बनाने की, उनकी प्रतिबद्धता प्रत्येक रचना में दृष्टिगत है। ऐसा अनायास हुआ है, अथवा बहुत सोच-विचार कर, इस पर कोई टिप्पणी करना दुष्कर है। पाठक इसका निर्णय स्वयं करेंगे। हाँ, एक बात स्वयंसिद्ध है, डॉ. सूरज मृदुल की भाषा अपनी लगती है—देशज और टटकी।

डॉ. मृदुल के इस संग्रह की रचनाओं 'बंदर-बांट', 'गधे ही गधे', 'सजा-ए-नेतागिरी', 'बोतल संस्कृति', 'सफेद दाढ़ी', तथा 'दरबार हाजिर है' में इसी पक्ष को उभारा गया है। वे अपनी कहानियों में प्रायः अभिधात्मक रहते हुए भी प्रहारात्मकता को नहीं छोड़ते हैं। सच कहिए तो फूल की छड़ी से, रोग का निवारण करने की कोशिश हैं, डॉ. सूरज मृदुल की रचनाएँ।

एक जिम्मेदार लेखक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा अन्यान्य परिवेशगत विसंगतियों को तत्कालीन समाज और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में समग्र रूप से देखता है। वह एकांगी नहीं हो सकता। असमान परिस्थितियों के कारणों की तलाश, विद्रूपताओं की चीर-फाड़ और सत्यं शिवं सुन्दरं की अभीप्सा ही एक जागरूक लेखक की लेखनी का धर्म है। इस दृष्टि से भी इस संग्रह की रचनाएँ वैविध्यपूर्ण हैं। इनमें जीवन-जगत् के तमाम पहलुओं को उभारने का सतत प्रयास है। इस नाते सूरज मृदुल की संवेदनात्मक अनुभूति, पीड़ा को शब्द देने की कला और भाव-संप्रेषणीयता की ललक आशान्वित करती है कि उनकी लेखनी निरंतर लेखन को जीवन-शैली में ढालती रहेगी।

मैं विडंबनाओं का पर्दाफाश करने वाले प्रत्येक रचनाकार की भाँति डॉ. सूरज मृदुल का अभिनंदन करता हूँ और उन्हें इस संग्रह के प्रकाशन के अवसर पर अपनी हार्दिक बधाइयाँ देता हूँ।

सूर्य कुमार पांडेय

विजयादशमी, 2001
353 त्रिवेणी नगर
लखनऊ-226020

सम्मतियाँ

डॉ. सूरज मृदुल हिन्दी के एक स्थापित रचनाकार हैं। इन्होंने अब तक कई पुस्तकें लिखी हैं, जो काफी लोकप्रिय हुई हैं। इनकी नई कृति 'फतेहपुर वाली भाभी' है, जिसकी हर कहानी मर्मस्पर्शी एवं पठनीय है। सच कहिए तो समाज से जुड़ी कहानियाँ या वृत्तान्त, समाज का ही अंग होता है और समाज, बुराइयों या घटनाओं का जाल है। डॉ. मृदुल ने अपने कथा के माध्यम से, समाज में व्याप्त अनावश्यक भ्रष्टाचार की भीतरी तह तक, इसे कुरेदा और पकड़ा है। मेरा यह विश्वास है कि यह पुस्तक न केवल साहित्य-प्रेमी बल्कि समाज शास्त्र एवं दर्शन शास्त्र में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए भी लाभदायक सिद्ध होगी। वैसे यह पुस्तक अपनी सरल भाषा के कारण अत्यधिक लोकप्रिय बन सकती है। हमारी हार्दिक बधाई !

प्रोफेसर हरिहर भक्त

कुलपति

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

कामेश्वर नगर, दरभंगा-846004

●

डॉ. सूरज मृदुल हिंदी साहित्याकाश में प्रदीप्त एक ऐसे शख्सियत का नाम है, जिनका साहित्यानुराग एक विडम्बना से कम नहीं। इन्होंने अपने बहुआयामी व्यक्तित्व के बल पर ही, अपनी रचनाधर्मिता को निरंतर पल्लवित और पुष्पित किया है। आज ये हिन्दी भाषा और साहित्य के संवर्द्धन हेतु संघर्षशील हैं। स्वतन्त्र पत्रकारिता एवं लेखन के क्षेत्र में डॉ. मृदुल ने अपनी अमिट पहचान स्वयं बनाई है।

डॉ. सूरज मृदुल की नई कृति 'फतेहपुरवाली भाभी' कहानियों का एक संग्रह है। इन्होंने इस पुस्तक के माध्यम से हर क्षेत्र के लोगों में, जहाँ भी कहीं कमी नजर आई है, वहाँ अपनी कलम से उसका बखिया उधेड़ा है। ये पात्र हमारे आस-पास के ही लोग होते हैं। यह बात लेखक बखूबी अपने पात्र से कहला देता है, जो सराहनीय है। आशा है कि यह पुस्तक जल्द ही साहित्याकाश में लोकप्रिय होगी। ऐसा मेरा विश्वास है।

डॉ. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी
व्याख्याता, स्नातकोत्तर गांधी विचार विभाग
ति. मा. भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर-7 (बिहार)

●

डॉ. सूरज मृदुल द्वारा रचित यह पुस्तक 'फतेहपुरवाली भाभी', की कहानियाँ जीवन के विभिन्न क्षेत्रों और अनुभवों की हैं। लेखक ने जो भी अपने समाज में देखा, परखा एवं समझा है, उसे ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया है, यह निर्विवाद है। डॉ. मृदुल की कहानियों में, हमें प्रायः स्वतःस्फूर्त कटु सत्य के दर्शन होते हैं। लेखक जानी-मानी परिस्थितियों तथा व्यक्तियों के विभिन्न रूपों का अध्येता है। इस कारण इनके निरीक्षण अध्ययन की सूक्ष्मता की प्रशंसा करनी होगी।

डॉ. मृदुल परिश्रमी तथा अध्यवसायी रचनाकार हैं और अल्प अवधि में ही, इनकी कई पुस्तकें सामने आ गई हैं। इनका निरन्तर लेखन तथा अध्ययन, इनकी कला को और समृद्ध बनाएगा, ऐसी आशा है!

चन्द्रमोहन प्रधान
निदेशक, ज्ञान कला केन्द्र
आमगोला, मुजफ्फरपुर-2 (बिहार)

●

डॉ. सूरज मृदुल वर्तमान हिन्दी जगत् में एक ऐसी बहुमुखी प्रतिभा का नाम है, जिसमें एक कथाकार की भावना, आत्मा और तर्कशील मस्तिष्क एक साथ कार्यरत है। कोमल भावनाओं के साथ कठोर निर्णायक की क्षमता बहुत ही कम साहित्यकारों में देखने को मिलती है। डॉ. मृदुल इन दिनों विपरीत तत्त्वों का निर्वाह, अपनी रचना में बड़ी ही आसानी से कर लेते हैं। जो काबिले तारीफ है।

इनका नवीनतम कहानी-संग्रह 'फतेहपुर वाली भाभी' की सभी कहानियों में सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं पाश्चात्य प्रभाव का सजीव वर्णन देखने को मिलता है। लेखक अपनी कहानियों को बहुत अधिक पेंचदार बनाने का प्रयास नहीं किया है। सभी कहानियाँ सरस और सुगम्य हैं। कोई भी पाठक इन कहानियों में अपने समाज का सचित्र जीवन देख सकता है। आशा है कि पाठक भी इससे अवश्य ही लाभान्वित होंगे।

हार्दिक बधाई !

डॉ. ब्रजनन्दन वर्मा
सम्पादक, वज्जिका-माधुरी
मिठनपुरा, मुजफ्फरपुर-2 (बिहार)

●

दो शब्द

आज अपनी यह पुस्तक 'फतेहपुर वाली भाभी' आपके हाथों में देते हुए मुझे बड़ी खुशी हो रही है, क्योंकि यह पुस्तक मात्र आप जैसे विद्वान् पाठक के लिए ही मैंने लिखी है। मैं पूर्व की तरह इस बार भी आपको अपने इस कहानी-संग्रह के माध्यम से कथा-सागर की गहराई में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ आप वास्तविकता के मोती पाकर आकुलता तथा व्याकुलता में खो जाएँगे, जिससे आपको पता भी न लग पाएगा कि कब इस पुस्तक की एक-एक पुष्प-कथा माला बनकर, आपके गले का हार बन गयी और कब आपके मन-मस्तिष्क के मर्म में पहुँचकर, आपको बाँध ली। यह मात्र आपके प्रोत्साहन एवं प्रेरणा के कारण ही संभव हो सका है।

हालाँकि मेरी अब तक कि कई पुस्तकों जैसे, 'कहानी के करीब', 'कवितांजलि', 'एक टुकड़ा सुख', 'रंग-व्यंग्य-तरंग', 'द्रवीभूत होते क्षण', 'बैसाखियों के सहारे', 'औरत है महान', 'स्वास्थ्य-दर्शन' के बाद यह नई कृति 'फतेहपुर वाली भाभी' आयी है, जिसकी हर कहानी अच्छी बन पड़ी है। इसलिए पूर्व की तरह आपको इस पुस्तक की पच्चीस कहानियाँ, किसी न किसी रूप में, आपको अवश्य ही बौद्धिक विकास, मनोरंजन एवं प्रभावित करेंगी। ऐसा मेरा विश्वास है।

वैसे मैंने इन कथाओं की तस्वीर में, आज के हर वर्ग का वातावरण जैसे—राजनीतिक, सामाजिक, पारिवारिक, हास्य-व्यंग्य, दुख-सुख, देश-विदेश के माहौल को, स्केचिंग करने की कोशिश की है। मैंने अपनी पूरी शक्ति इन कथाओं की तस्वीर में, भिन्न-भिन्न रंगों से बिम्बित करने की कोशिश की है, इसलिए मेरा ऐसा विश्वास है कि आपको यह कथा, एक नए संसार में अवश्य ही ले जाएगी। वैसे इन कहानियों की तस्वीर में, मैंने हर तरह का संदर्भ देते हुए सामाजिक विडंबनाओं का पुट ज्यादा भरने की कोशिश की है। क्योंकि आदमी जितना खुश रहेगा, उसकी कार्यशीलता, कार्यभार उतना ही उन्नति के शिखर पर बढ़ता जाएगा। अब आप स्वयं देखें एवं विचारें कि हर वर्ग की स्थिति-परिस्थिति को एकत्र कर कहानी जैसी तस्वीर बनाने में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ।

अंततः मेरा यही कहना है कि मेरा यह संग्रह, आपको अगर थोड़ा भी पसंद आता है तो निःसन्देह मेरे लिखने का लक्ष्य पूरा हो जाता है। इसलिए पूर्व की

तरह मैं इस बार भी चाहता हूँ कि आप अपना अमूल्य विचार, अपने पत्र के माध्यम से देने का कष्ट करें कि इस पुस्तक की कहानियाँ आपको कैसी लगीं? जिससे आप मेरे प्रेरणास्रोत बनें और मैं भविष्य में और भी इससे सुन्दर कथा लिख सकूँ!

धन्यवाद !

होली पर्व

डॉ. सूरज मृदुल

गुरुद्वारा के सामने, रमना,
मुजफ्फरपुर (बिहार) 842001 (भारत)

अनुक्रमणिका

सुहाग की साँझ	15
चाभी	21
फतेहपुरी वाली भाभी	26
रिश्तेदार	32
वॉक मैन	37
रांग नंबर	42
बदलाव	48
बंदर-बाँट	57
हाय मेरा मुर्गा !	61
बोतल संस्कृति	65
रईसी से तौबा!	69
अहसान फरामोश	73
मेहमान	76
मैसेज-पर-मैसेज	79
छप्पर से धन-वर्षा	87
आलूवाले बाबू	93
काल का डर	98
भूखे लोग	102
गधे-ही-गधे	107
आह प्याज! वाह प्याज!	113
कुत्ता बाबा	118
सफेद दाढ़ी	122
चुनावी मैदान	128
सजा-ए-नेतागिरी	132
दरबार हाजिर है!	137

सुहाग की साँझ

आज होली अवश्य है पर उसका रंग मुझ पर कुछ भी तो नहीं चढ़ पाया। क्योंकि जब भी होली आती है, वह मुझे कुछ सोचने पर विवश कर देती है। मुझे यह प्रश्न आकर कचोटने लगता है कि यह होली का पर्व क्यों आता है? वैसी ही होली क्यों नहीं आती जैसी कि मैं खेल चुका हूँ? और, फिर धीरे-धीरे पिछली यादें मेरे मन-मस्तिष्क पर हावी होने लगती हैं—उनमें यकायक अमृता दिखाई पड़ती है।

उस दिन भी तो होली ही थी। चारों ओर प्रकृति रंग और भंग की मस्ती लुटा रही थी। तभी मेरे पास अमृता आई थी। वह बोली थी, "श्रीनाथ बाबू! दरवाजा खोलिए!" मैं रंग खेलने से इस प्रकार कतरा रहा था जैसे कोई आलसी व्यक्ति जाड़ों में नहाने से कतराया करता है। तभी शेखर भी उसी के पीछे-पीछे चला आया था। वह भी दरवाजा पीट-पीटकर थक गया था। लेकिन मैं टस-से-मस नहीं हुआ था। वह मेरा घनिष्ठ मित्र था और मेरे साथ होली खेलने आया था। फिर वह निराश होकर मेरे दरवाजे से लौट गया था। उसके बाद अमृता की स्वर-लहरियाँ मेरे कानों में पड़ने लगी थीं, "श्रीनाथ बाबू! ओ श्रीनाथ बाबू! किवाड़ खोलिए न! मैं आपको रंग नहीं डालूँगी। कम-से-कम मुझ पर तो विश्वास कीजिए न!" फिर तो मैंने किवाड़ खोल दिए थे। पर यह क्या? अमृता के एक हाथ में रंगभरी बाल्टी थी और दूसरे हाथ में सूखा गुलाल था। देखकर मैं चौंका था। वह अंदर कमरे में घुसने में सफल हो गई थी। उसने मेरे साथ जमकर होली खेली थी। मेरा हर अंग रंग से रँग गया था। यहाँ तक कि उस एकांत में हम दोनों के बीच कोई दूरी नहीं रह गई थी। हम लोग आपस में इतने सटे हुए थे कि एक-दूसरे की साँसें सुन सकते थे। अमृता नटखट स्वभाव की थी। इसलिए मुझे वह और भी अच्छी लगती थी।

वह सहसा ही गंभीर हो आई और कहने लगी, "श्रीनाथ बाबू! जिस तरह से हम दोनों ने आज होली खेली है, हम दोनों में कोई भी परायापन नहीं रह गया है। मैं अपने को भाग्यशालिनी समझूँगी जब आप मेरी माँग में सिंदूर भर देंगे।"

मैं उसकी बातें चुपचाप सुनता रहा और भावना में बहकर मैंने उसे वक्ष से सटा लिया था। हम लोग एक-दूसरे से प्यार करने लगे थे। हमारा वह प्यार इतना बढ़ चला था कि एक बार तो शेखर ने उसका हाथ पकड़कर कह ही दिया था,

"तुम बहुत सुंदर हो!"

इस पर अमृता ने उसके सिर पर चप्पल मार दी थी। यह बात शेखर ने मुझसे स्वयं ही कही थी। शेखर ने मुझसे कहा था कि अमृता से न बोलूँ। उसने कहा था, "अगर अमृता से बोलोगे तो मेरा-तुम्हारा रिश्ता समाप्त हो जाएगा।"

शेखर मेरा घनिष्ठ मित्र था। मेरा वह बचपन का दोस्त, एक लड़की की खातिर ऐसा कहने लगा था। मुझसे वह तुनक गया था। सच तो यह है कि वह सोचा करता था कि अमृता केवल उसी से प्यार किया करती है। उसे यह भी पता था कि वह मुझसे भी प्यार किया करती है। इस प्रकार मैं दोराहे पर खड़ा हो गया था। मैं किस रास्ते को चुनता और किसका त्याग करता? मेरे मस्तिष्क में यह सब कौंध रहा था। उसी समय शेखर हमारे पास आया और वह कहने लगा, "श्रीनाथ भाई, अमृता से मैं प्यार करता हूँ। तुम मेरे रास्ते से हट जाओ।"

मैंने भी उससे स्पष्ट रूप से कहा था, "शेखर, तुम उससे प्यार करते हो। निस्सन्देह तुम अमृता से प्यार कर सकते हो। पर वह तुम्हें प्यार करती है या नहीं, इसका निर्णय वही करेगी। तभी मैं भी कुछ निर्णय ले पाऊँगा। वर्ना...।"

अमृता एक डॉक्टर की तीन बेटियों में से सबसे बड़ी बेटी थी। वह इतनी सुंदर थी कि मेरे हृदय ने उसे प्रेमिका के रूप में स्वीकार कर लिया था। उस दिन डॉक्टर साहब बाहर किसी रोगी को देखने के लिए गए थे। अमृता गले में आला लटकाए पैड पर कुछ लिख रही थी। उस दिन शेखर और मैं उसका निर्णय सुनने के लिए उसके यहाँ जा पहुँचे थे। उस समय मेरा चेहरा गहरे सदमे से उदास लग रहा था। उसी दशा में मैं शेखर के साथ वहाँ गया था। हम दोनों कुर्सियाँ खींचकर उसी के पास बैठ गए थे। हमारी आहट पाकर अमृता ने सिर उठाकर हम दोनों को देखा था। वह मुझसे मुखातिब हुई थी, "श्रीनाथ बाबू! आज आप इतने उदास कैसे हैं? आपको क्या हो गया है?"

मैं चुप था। लेकिन वही प्रश्न उसने दुबारा डाँटने के अंदाज में पूछ डाला था। तब मैंने भी कुछ झुँझलाकर कहा था, "अमृता, छोड़ो भी इस बात को। मुझे मेरे ही हाल पर छोड़ दो।"

मैंने शेखर को पूछने के लिए संकेत किया था। उसने कहा था कि वह नहीं पूछ पाएगा। मैं ही पूछूँ। तब मैंने कुछ कड़ककर उससे कहा था कि भाई जिस काम के लिए आए हो, उसे पूछ तो लो। इस पर अमृता ने चौंककर कहा था, "कौन-सी बात है जो आप दोनों आपस में झगड़ रहे हैं?"

तभी शेखर के मुँह से निकल पड़ा था, "अमृता, मैं तुमसे प्यार करता हूँ।" सुनकर अमृता आपे से बाहर हो आई थी।

क्रोध में आकर उसने शेखर से कहा था, "मैं तुम जैसे गधे से प्यार नहीं

करती हूँ, जो अपने बारे में यह भी नहीं सोच सकता कि मैं क्या हूँ! और अगर प्यार ही करने का चस्का लगा है तो अपने घर में जाके अपनी बहन से किया करो।''

मैंने अमृता के चेहरे पर निश्चिंतता देखी थी। जैसे कि वह पहले से ही निर्णय ले चुकी थी। ऐसे में शेखर का चेहरा एकदम से फक्क पड़ गया था। मानो कड़ाके की सरदी में उसके ऊपर सौ वाल्टी पानी उँडेल दिया गया हो! मुझे भी तो यह बात चुभ गई थी कि अमृता ने वह बात कैसे कह दी थी! उसके माथे पर शिकन तक नहीं आई थी। मैं सोचने लगा कि अमृता आखिर डॉक्टर की बेटी है। मैं एकटक उसी को देखने लगा था। डॉक्टर की बेटी को स्पष्टवादी तो होना ही चाहिए। यह सुनकर शेखर बाहर चल दिया था।

मैं भी शेखर के पीछे-पीछे ही जाने को हुआ था। तभी अमृता ने मुझे बुलाकर कहा था, ''श्रीनाथ बाबू, आज मेरे हाथ की बनी हुई चाय नहीं पिएँगे?''

इस पर मैं बोला था, ''नहीं अमृता, ऐसी बात नहीं है। आज तुम मुझे मेरे ही हाल पर छोड़ दो तो अच्छा रहेगा।'' यह कहकर मैं बाहर चला आया था। मैं सोचने लगा था कि अमृता आज अगर हमारे निर्णय के विपरीत निर्णय लेती तो मैं आत्महत्या ही कर बैठता! लेकिन ईश्वर को शायद मेरा सोचना स्वीकार नहीं था।

अमृता हमारे घर इस कदर आने-जाने लगी थी जैसे कि वह हमारे ही परिवार की सदस्या हो। मैं भी उसके यहाँ जाता रहता। अगर किसी दिन मैं देर से पहुँचता तो उसे द्वार पर खड़ी देखा करता। वहाँ खड़ी-खड़ी वह मेरी ही राह ताकती रहती।

एक बार मेरे किसी मित्र के यहाँ शादी थी। वहाँ मुझे ही सारा प्रबंध करना था। उस शादी में सुबह के चार बजे तक मुझे वहाँ काम करना पड़ा था। उसके बाद मेरी आत्मा से आवाज आई थी कि कोई मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। तब न चाहते हुए भी मैंने आत्मा की आवाज को स्वीकार कर लिया था। जल्द ही निर्णय लेकर मैं अपने घर की ओर चल दिया था। मैं जल्दी-जल्दी जाने लगा था। तभी मैंने देखा कि अमृता अपने दरवाजे पर खड़ी बाहर के हर आने-जाने वाले को देखती जा रही थी। अवश्य ही वह मेरे लिए ही परेशान रही होगी। ऐसे में मैं घर आया था। तब मैंने दौड़कर उसे अपनी बाँहों में भर लिया था। उसने कहा था, ''श्रीनाथ बाबू, आज आप इतनी देर से क्यों आ रहे हैं?''

इस समय मैं भी भावसागर में बहकर बोल पड़ा—''अमृता, तुम मुझे कितना चाहती हो! तुम मेरा कितना ध्यान रखा करती हो! इसे मेरा दिल ही जानता है।''

उसके बाद वह मेरे साथ मेरे घर के समीप तक आई थी। उसने कहा था, ''अच्छा, अब मैं चलती हूँ, श्रीनाथ बाबू!''

मैंने उसका कंधा थपथपाकर कहा था, "ठीक है, अमृता! जाओ और निश्चिंत होकर सो जाओ। अब मैं भी तो घर लौट आया हूँ।"

अमृता भरी बदली-सी रो पड़ी थी। उसी दशा में वह बोली थी, "श्रीनाथ बाबू, आप जो सोचते हैं, वैसा तो नहीं है। क्योंकि जब तक हम दोनों दो शरीर एक आत्मा नहीं होंगे, तब तक मुझे निश्चिंतता कैसे मिलेगी?"

इस पर मैंने कहा था, "तुम ठीक कहती हो, अमृता। मेरे हृदय में भी न जाने कितनी ही उथल-पुथल मची रहती है। यह तभी शांत होगी जब हम दोनों.....।" भाव-विह्वल होकर मैंने उसे अपने सीने से लगा लिया था। उसकी पीठ सहलाते हुए मैंने उससे कहा था, "अब जाओ भी अमृता! सवेरा होने वाला है। अब जाकर सोओ।"

अमृता चल दी थी। सच तो यह था कि मेरे प्राण उसी के साथ अटके हुए थे। जब मैं घर आया तो परिवार वाले सभी सोये हुए थे। मैं भी खाट पर निढाल पड़ गया था। मैं सिगरेट-पर-सिगरेट फूँकने लगा था। मैं सोचने लगा था, 'अमृता मेरे कितने करीब आ गई है! शायद अब हम दोनों एक-दूसरे के होके ही रहेंगे!' लेकिन ईश्वर को यह सब स्वीकार नहीं था।

एक दिन मोहल्ले वालों ने हमारे पिताश्री के आगे एक प्रश्न खड़ा कर दिया। वह प्रश्न था, "श्रीनाथ की शादी कब होगी?" मेरे पिताश्री मेरे और अमृता के संबंधों से एकदम अनभिज्ञ थे। जब उन्हें सारी बात मालूम हुई तो वे मेरी शादी करने के लिए तुल ही गए। जब मैंने उनकी बातें सुनीं तो मैं गिरकर बेहोश हो गया था। जब-जब भी मैं होश में आता, मेरे मुँह से यही निकलता, "अमृता, हम दोनों को कोई अलग नहीं कर सकता। जिएँगे तो साथ--मरेंगे तो साथ।"

कितनी ही बार अमृता मेरे पास आई थी। मैंने उसके हाथों को अपने हाथों से पकड़कर वायदे भी किए। उसने भी वायदे किए। उसने कहा था, "ठीक है श्रीनाथ बाबू! हमारे और तुम्हारे बीच कोई नहीं आएगा।" पर जिंदगी को यह सब स्वीकार नहीं था।

परिस्थितियों ने हमारे जीवन को एक चौराहे पर ला पटका था। उस चौराहे पर एक ओर अनजान राहें थीं तो दूसरी ओर भटकती हुई आत्माएँ। तीसरी ओर जीवन का अंत था। जिस पर निष्प्राण जीवन चिता पर धू-धू कर जल रहा हो। मैं किधर जाऊँ? मेरी समझ में कुछ भी तो नहीं आ पा रहा था। उधर, पिताश्री ने मेरी रुचि के विपरीत मेरी शादी ही तय कर दी थी। मैं तीसरे रास्ते की ओर नहीं बढ़ पाया। मैं आत्महत्या कर पाता कि सब कुछ एकाएक बदल गया।

हाथ में अपना वैवाहिक कार्ड लेकर मैं उस मरुस्थल की ओर गया था जहाँ कभी गुलाब के दो फूल खिले थे। उन फूलों को बचाने के लिए हम दोनों ने

अपनी-अपनी जिंदगी दाँव पर लगा दी थी। आज भी तो अमृता मेरी ही राह ताक रही थी। मुझमें इतना साहस ही न था कि मैं उसे गले से लगाता। मेरा गला सूखने लगा था। मेरी प्रियतमा एकटक मुझे ही देखती जा रही थी। मेरे पैर मुड़ना चाह रहे थे। तभी मेरे हृदय ने उछाल खाया। मैंने उसे गले लगाना चाहा। पर पैर वहीं जैसे जम-से गए थे। मेरी आँखों से जो आँसू निकल रहे थे, मैं उन्हें रोकने का प्रयास कर रहा था। अमृता ने ही मेरी तंद्रा भंग की थी, "श्रीनाथ बाबू! आप क्यों रो रहे हैं? जिंदगी को क्या मालूम था कि एक दिन ऐसा भी आएगा!"

मैंने भी उसी का समर्थन कर दिया था, "हाँ अमृता, तुम ठीक ही कह रही हो।"

मैंने सोचा था कि एक बार उसके गले से लग लूँ। पर ऐसा न हो पाया था। चाहकर भी तो मैं ऐसा न कर पाया था। मैं देख रहा था कि अमृता भी रोती जी जा रही थी। मैं भी क्या कर सकता था! मेरे हाथ तो बँध चुके थे। दिमाग में कई बातें कौंधने लगी थीं। जिस अमृता ने एक दिन मेरी खातिर शेखर को अपमानित किया था, जो दुनिया की परवाह किए बिना मेरी बाट जोहा करती थी, उसी को मैं...! मेरी समझ में कुछ भी तो नहीं आ पा रहा था। मेरे आँसू और भी तेजी से निकलने लगे थे। मैं फफक पड़ा था। उसने रोते हुए कहा था, "श्रीनाथ बाबू, अब क्या कीजिएगा!"

मेरे होठ थरथरा कर ही रह गए थे। तभी उसने मेरे हाथ में विवाह के कार्ड को देखकर कहा था, "आप मुझे आमंत्रित करने आए हैं न! मैं जरूर आऊँगी। मैं क्यों नहीं आऊँगी भला? मेरे श्रीनाथ बाबू की शादी है और मैं न आऊँ? कृष्ण मीरा को बुलाए और वह न आए, यह कैसे हो सकता है? मैं तो आपकी मीरा हूँ।" इतना कहकर वह दहाड़ मार कर रोने लगी थी।

उसके बाद वह पागलों की तरह हँसती हुई मेरे सीने से आ लगी थी। वह बेहोश हो गई थी। मैं जड़-सा यह सब देखता ही रह गया था। उसका मेरे सीने पर कसाव भी ढीला पड़ने लगा और वह वहीं गिर पड़ी थी। मैंने उसे उठाकर बेड पर लिटा दिया था। उसके बाद मैंने उसे गर्मागर्म चाय पिलाई थी। वह सूनी निगाहों से मुझे ही ताकती रही थी। उसी समय उसके पिताजी आ गए थे। मैंने उन्हें सारी बातें बतला दी थीं। उन्होंने कहा था, "बेटे, रात अधिक हो आई है। तुम अब अपने घर जाओ। इसे मैं सँभाल लूँगा।"

मेरा जी नहीं चाह रहा था कि मैं उसे छोड़कर घर आ जाऊँ। किसी प्रकार पाँव आगे बढ़ाता हुआ मैं अपने घर की ओर चला आया था।

दूसरे दिन अमृता फिर हमारे यहाँ आ गई थी। जैसे उसने अपने हृदय पर हमेशा के लिए पत्थर ही रख लिया हो! मेरे विवाह की हर रस्म को वह अपने हाथ

से कर रही थी। मेरी तो आँखें ही पथरा गई थीं। उसके होते हुए मैं दूसरी से शादी करने जा रहा था। मैं तो ऐसा सोच भी नहीं सकता था। सारी वैवाहिक रस्में पूरी हो लेने के बाद जब मैं दूल्हे के रूप में सँवारा गया तो उसी ने मेरे ललाट पर अक्षत-रोली का तिलक लगाया था। उसके त्याग को देखकर मेरी आँखें छलछला आई थीं। मेरा मन हो रहा था कि उसके पैरों पर पड़कर उससे कहूँ, 'अमृता, यह सब कैसे हो गया?' पर मेरे होठ तो सदा के लिए बंद हो चले थे। मैं घोड़े पर सवार होकर अपनी दूसरी जीवन-संगिनी से अपने गले में हार डलवाने को चल दिया था।

विवाह के बाद जब मैं घर लौटा तो मैंने सुना कि अमृता हम लोगों को छोड़कर चली गई। नारी अपने हृदय पर पत्थर रख ले, पुरुष से कितनी भी दूर हो जाए। फिर भी वह नारी ही तो है! उसका हृदय प्रेम के वियोग में उबल पड़ता है और तब वह...।

मैंने जैसे ही ये बातें सुनीं, मेरा खून ही सूख गया। मैं गिर पड़ा। ईश्वर ने शायद मृदुला के लिए अच्छा ही किया जो मैं बच गया। नहीं तो नई आई मृदुला सदा रोती ही रहती। सच! उस दिन मैंने सोचा कि नारी! तू क्या नहीं है? ममता है, प्यार है, स्नेह है। ऐसा ही कुछ सोचते हुए मैंने अपनी नव विवाहिता मृदुला को अपनी बाँहों में समेट लिया!

चाभी

महाजन दौड़ा-दौड़ा मालिक के पास आया। उसने कहा, "सर, देखिए तो, कैश की चाभी कहीं मैंने आपके पास तो नहीं रख छोड़ी है?"

"नहीं, मेरे पास तो नहीं है।" शांति बाबू अपनी मेज की दराज देखकर बोले।

"फिर क्या हुआ? वो चाभी कहाँ गई? मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है।" महाजन का चिंतित स्वर था।

"मेरा ब्रीफकेस किधर है?" शांति बाबू बोले, "आलम को बोलो कि वो गाड़ी से मेरा ब्रीफकेस ले आए।"

"जी।"

थोड़ी देर बाद आलम शांति बाबू का ब्रीफकेस ले आया। उसमें उन्होंने कैश वाली आलमारी की चाभी खोजी। लेकिन वह मिली नहीं। महाजन हमारे कमरे में जाकर बैठ गया। वह सोचने लगा, "आखिर हमारे पास से कैश की चाभी कहाँ गायब हो गई?" वह फिर से शांति बाबू के पास गया और बोला, "सर, कहीं अमरनाथ बाबू तो हमारी चाभी नहीं ले गए? उनके पास हमने वैसी ही चाभी देखी थी।"

"अच्छा, हो सकता है। जल्दी से फैक्ट्री में फोन मिलाओ। कहीं वह नोएडा चला गया तो उसके लिए आदमी वहीं भेजना पड़ेगा। एक अलग परेशानी होगी।" शांति बाबू बोले।

महाजन ने फोन मिलाया, "हलो, अमरनाथ?"

"हाँ, बोल रहा हूँ।" उधर से कहा गया।

"अरे, तुम्हारे बैग में कैश वाली चाभी तो नहीं चली गई! जरा देखो तो।"

"अच्छा, देखता हूँ।" कहकर अमरनाथ चाभी ढूँढ़ने लगे।

चाभी नहीं मिली तो अमरनाथ ने उन्हें फोन मिलाकर कहा, "भैया, मेरे पास तो कैश वाली आलमारी की चाभी नहीं है। वहीं खोजवाइए। वहीं कहीं पड़ी होगी।"

"ठीक है।" कहकर शांति बाबू ने फोन रख दिया। उन्होंने पूछा, "अच्छा

महाजन, तुम्हारे पास आज कौन-कौन लोग आए थे?''

''सर, मेरे पास तो स्टॉफ के लोग अपनी पेमेंट लेने आए थे।'' महाजन ने बताया।

''उन्हीं में से कोई गलती से चाभी न ले गया हो।'' उन्होंने आशंका जतलाई।

''कैसे कहें, कुछ समझ में नहीं आता।'' महाजन सिर खुजलाने लगा। ''फिर भी, उनके नाम बतलाओ। मैं उन्हें उनके घर से बुलवा लेता हूँ।'' यह कहकर शांति बाबू ने घंटी बजाई। अंदर एक पिअन आ खड़ा हुआ। उन्होंने उससे कहा, ''जरा मोहन, सोहन, रवींद्र, शैलेंद्र को घर से तो बुलवा लाओ।''

''जी।'' कहकर पिअन उनके चैम्बर से बाहर चल दिया।

इधर, महाजन ऑफिस के सारे बाबुओं की मेजों की दराजों को चेक करने लगा। पर उसे कहीं भी वह चाभी नहीं मिली। ऐसे में उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। वह सोचने लगा कि आज ही तो बैंक से दो लाख रुपये लाया हूँ। कल सुबह सारे स्टॉफ को वेतन देना है। ऐसे में चाभी गायब है। अब क्या करें? मालिक सारा दोष मुझे ही देंगे। अगर रुपये गायब हो गए तो मेरी सारी ईमानदारी धरी-की-धरी रह जाएगी। मेरे माथे पर बेईमानी का धब्बा लग जाएगा। मालिक ने मेरे बाबूजी के कारण ही तो मुझे यह नौकरी दी थी। आज उस चाभी के कारण, उसकी पच्चीस वर्ष की नौकरी का अस्तित्व खतरे में पड़ रहा था। वह इसी प्रकार ऊँच-नीच, अच्छे-बुरे आदि विचारों के द्वंद्व में उलझता गया। तभी पिअन ने अंदर आकर कहा, ''आपको साहब बुला रहे हैं।''

''अरे क्या हुआ? चाभी मिल गई क्या?'' महाजन ने उससे पूछा।

''नहीं।''

महाजन उसी समय मालिक के चैम्बर में जा पहुँचा। शांति बाबू ने पूछा, ''अच्छा ये बताओ कि आज गोपाल को कुछ ड्राफ्ट वगैरह दिए थे क्या?''

''हाँ, सर। ख्याल आ गया। कहीं वही तो नहीं ले गए। वे नेलकटर से नाखून कुतर रहे थे। हो सकता है, उन्हीं के बैग में चाभी चली गई हो!'' महाजन का आशावादी स्वर था।

''लेकिन वो तो आज कलकत्ता जाने वाला था। ठीक है, मैं फोन करके पता करता हूँ।'' शांति बाबू अमरनाथ से फोन पर पूछने लगे, ''अरे भई, गोपाल आज कलकत्ता जाने वाला था। वो गया कि नहीं?''

''हाँ। मुझे यह तो मालूम है कि गोपाल बाबू आज ही कलकत्ता राजधानी से जा रहे हैं। स्टेशन पर किसी आदमी को भेजकर पता करवाता हूँ।'' अमरनाथ बोले।

"ठीक है। जरा पता तो करवाओ।"

"ठीक है, भैया। मैं पता करवाता हूँ।" अमरनाथ ने फोन रख दिया।

शांति बाबू ने ज्यों ही फोन क्रेडिल पर रखा, उसी समय एक व्यापारी उनके चैम्बर में आकर धम्-से कुर्सी पर बैठ गया। वह अपने लिए उनसे अधिक माल की माँग करने लगा। शांति बाबू ने पिअन बुलवाकर उनके लिए चाय-नाश्ता लाने को कहा।

आधे घंटे बाद फोन की घंटी बजने लगी। रेलवे स्टेशन से नवीन का फोन था।

"हलो!" शांति बाबू ने फ़ोन उठाकर पूछा, "किससे बात करनी है?"

"जी, शांति बाबू हैं?" उधर से पूछा गया।

"हाँ। मैं बोल रहा हूँ।"

"जी, मैं नवीन बोल रहा हूँ।" गोपाल बाबू से मैं स्टेशन पर मिलने गया था। लेकिन प्लेटफॉर्म तक आते-आते गाड़ी निकल चुकी थी। आप कहें तो उनसे भेंट करने के लिए गाजियाबाद जाऊँ!"

"ठीक है। देख लो। अगर मिल जाता है तो।" शांति बाबू बोले।

"जी!" कहकर नवीन अपनी गाड़ी से गाजियाबाद की ओर चल दिया।

ऐसे माहौल में आगंतुक व्यापारी ने शांति बाबू से पूछा, "शांति बाबू, आप कुछ परेशान-से दीख रहे हैं। क्या कोई खास बात है?"

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।" शांति बाबू बोले।

तभी महाजन अंदर आ गया। उसने हड़बड़ाकर पूछा, "सर, चाभी मिल गई क्या?"

"नहीं तो, अभी तक तो नहीं मिली है।" यह सुनकर वह व्यापारी पूरी बात समझ गया फिर वह भाषणबाजी पर ही उतर आया, "आज का आदमी अपने काम पर ध्यान थोड़े देता है! उसे तो काम के समय क्रिकेट की कमेंट्री या फिर किसी नेता के भाषण में ही दिलचस्पी रहती है। ऐसे में वह अपने काम को क्या जिम्मेदारी के साथ निभा पाएगा?"

"ठीक कहते हैं, पाठकजी।" शांति बाबू ने भी उन्हीं का समर्थन कर दिया, "आज यही सब हो रहा है।"

"ऐसे में मुझे एक घटना याद आ रही है। ये जो हम लोग बैंक से ड्राफ्ट आदि बनवाते हैं न, इसमें अकाउंटेंट या मैनेजर केवल यही देखता है कि उसे अपने हस्ताक्षर कहाँ करने हैं। बाकी उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता। हमारे भाई साहब भी एक बैंक में काम करते हैं। उन दिनों उनके बैंक में एक नया अकाउंटेंट आया हुआ था। खाने-पीने में दिक्कत होने के कारण उसने अपनी पत्नी को भी

अपने ही पास बुलवा लिया था। संयोग से उन्हीं दिनों उनका बेटा हुआ था। उस उपलक्ष्य में स्टॉफ ने उनसे मिठाई खिलाने को कहा था। लेकिन मिठाई खिलाना तो दूर, वह इस संबंध में बात तक नहीं करना चाहता था। इसलिए हमारे भाई साहब और बैंक के अन्य कर्मचारियों ने मिलकर एक उपाय खोज निकाला। 'विड्राल फॉर्म' पर डेट वगैरह भर कर उन्होंने किसी ड्राफ्ट के ढेर में साथ रख दिया था। फिर क्या था। उन अकाउंटेंट महोदय ने उस फॉर्म पर हस्ताक्षर कर दिए थे। फिर पिअन उन ड्राफ्ट के ढेर से विड्राल फार्म भँजाकर मिठाई ले आया था। वह मिठाई उस महाशय को भी दे दी गई थी। इस पर उन्होंने पूछा था, "पाठकजी, आप यह मिठाई किस खुशी में खिला रहे हैं?" तब भाई साहब बोले थे, "श्रीमानजी, आपके बेटे होने की खुशी में ही यह मिठाई खिलाई जा रही है। आप ही ने तो विड्राल फॉर्म भरकर, यह मिठाई मँगवाई है।"

"पाठकजी, यह हो ही नहीं सकता।" अकाउंटेंट बोले।

"ऐसा ही हुआ है, श्रीमान्‌जी।"

"ठीक है। विड्राल फॉर्म लाइए।" उन्होंने कहा था, "जरा देखें तो।"

जब उन्होंने विड्राल फॉर्म देखा था तो अपना माथा ही पीट लिया था। मात्र छः इंच के कागज को भी ये लोग ठीक से नहीं देख सकते। फिर काम कैसे करेंगे?"

"खैर, कहने का मतलब यह है शांति बाबू कि आजकल जिम्मेदारी के साथ कोई भी तो काम नहीं करता। आज के कर्मचारी तो मात्र अपनी 'पे' से ही मतलब रखते हैं। अपनी फर्म, या ऑफिस के बारे में वे जरा भी नहीं सोचते। जबकि उसी से तो उन्हें रोजी-रोटी मिलती है। यदि आप उस पर थोड़ी-सी भी ज्यादती करते हैं तो वह 'यूनियन' की सहायता लेने लगता है। अब आप ही बताइए कि उसे नौकरी भी दीजिए और उसकी बात भी मानिए। यह कहां तक न्यायसंगत लगता है?"

"आप ठीक कहते हैं, पाठकजी!" शांति बाबू ने भी उन्हीं का समर्थन कर दिया।

तभी पिअन द्वारा बुलवाये गए पांच-छः कर्मचारी, शांति बाबू के चैम्बर में आ पहुँचे थे। वे उन सबसे बारी-बारी से कैश वाली आलमारी की चाभी के बारे में पूछने लगे। उनमें से हर कोई यही कह रहा था कि उसने चाभी नहीं देखी है। एक ने कहा, "हाँ, एक बार जब हम कैश रूम में पेमेंट लेने गए थे तो अनंत बाबू के हाथ में कुछ चाभियाँ जरूर देखी थीं। हो सकता है वे अपने साथ चाभी ले गए हों।" इस पर शांति बाबू ने तुरन्त फोन मिला कर पूछा—"अनंत बाबू हैं?"

"मैं बोल रहा हूँ।" उधर से कहा गया, "कोई खास बात?"

"आपके यहाँ गलती से कोई चाभी तो नहीं चली गई?" उन्होंने पूछा।

"नहीं तो।"

"आप जब महाजन से बात कर रहे थे तो आपके हाथ में कोई चाभी थी?"

"जी, थी तो। लेकिन वह मेरी फियेट की थी।"

"अच्छा-अच्छा। सॉरी! यहाँ की एक चाभी गुम हो गई है। स्टॉफ ने आपके हाथ में चाभी देखी थी, इसीलिए कह रहा था। खैर! और सब कुछ ठीक है न?" शांति बाबू बोले।

स्टॉफ शांति बाबू के चैम्बर से निकलकर महाजन के पास चल दिया। चाभी कैसे गुम हुई, इसके बारे में वे लोग उसका दिमाग चाटने लगे। इस समय सभी अपनी ओर से चिंता जतलाने लगे। सभी गहरी चिंता में डूबे हुए थे। तभी समरेश की नजरें कैश वाली आलमारी पर जा लगीं। वह चाभी तो उसी आलमारी पर लगी हुई मुस्करा रही थी। यह देखकर उसने चिहुंककर पूछा, "क्या यह चाभी तो नहीं है?"

"अरे, हाँ-हाँ। यही तो वह चाभी है।" देखकर महाजन का चेहरा खिल आया। उसे ऐसे खुशी हुई जैसी कि किसी को प्रथम पुत्ररत्न पैदा होने पर होती है। खुशी की यह खबर उसने दौड़कर शांति बाबू को दी। वे भी खुश होते हुए बोले, "अरे भई, तो वही बात हुई न कि 'गोदी में लड़का और नगर में ढिंढोरा!' यह कहकर वे अपने पास आए हुए व्यापारी के साथ खिलखिला पड़े।

फतेहपुरी वाली भाभी

अनूप और श्याम दोनों बैंक में बातचीत कर रहे थे। बहुत देर तक बातें करने के बाद अनूप ने कहा, "अच्छा मित्र, अब मैं चलता हूँ।"

"अरे भई, तुम्हें किधर जाना है?" श्याम ने पूछा।

"चाँदनी चौक।"

"मैं भी तो उधर ही जा रहा हूँ। ठीक है। तुम नीचे उतरो। मैं भी उधर ही आ रहा हूँ।" श्याम ने कहा।

"ठीक है।" कहकर अनूप सीढ़ियाँ उतरकर बाजार की ओर चल दिया।

तभी बाजार की ओर जाते हुए अनूप के पास एक बच्चा आया और उसकी अँगुली पकड़कर उसी के साथ चलने लगा। अनूप भी बिना किसी रोक-टोक के उसी के साथ चलता गया। पीछे से श्याम उसे आवाजें देने लगा, "अरे भई, रुक तो! मैं भी तो आ रहा हूँ।"

लेकिन अनूप मित्र की बातें अनसुनी कर उसी बच्चे के साथ आगे-ही-आगे बढ़ता चला गया। श्याम दौड़कर उसके पास जा पहुँचा। उसने हाँफते हुए कहा, "यार, कितनी देर से तुम्हें रुकने को कह रहा हूँ। लेकिन तुम हो कि सुनते ही नहीं!"

"बोलो, क्या बात है?" अनूप ने रुककर पूछा।

"अरे भई, हम भी तो तुम्हारे साथ चल रहे हैं। हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हो?"

"तुमसे तो बैंक में बात हो ही गई थी।" अनूप ने प्रश्न दाग दिया, "फिर?"

"हाँ-हाँ, ठीक है।" कहकर श्याम उसी के साथ चलने लगा। तभी बच्चे को देखकर उसने पूछा, "अरे यार, यह कौन है तुम्हारे साथ? यह बच्चा तुम्हारे पास कैसे आया?"

"तो क्या हुआ? बच्चा अपना ही जानो।" अनूप ने कहा।

"लेकिन यह बच्चा तुम्हारे पास कहाँ से आया? ये तो बताओ।"

"कहा न कि अपना ही बच्चा है!" अनूप मुस्करा दिया।

"देख! यों पहेलियाँ न बुझा। सच-सच बता, क्या बात है? तू किसी का बच्चा चुराकर तो नहीं ले जा रहा है?"

"इससे तुम्हें क्या परेशानी है? यह तुम्हारा बच्चा तो नहीं है, फिर तुम क्यों परेशान हो रहे हो?"

"अच्छा भई, तुम समझो और यह बच्चा समझे!" श्याम चुप हो गया।

तभी एक महिला दौड़ी-दौड़ी अनूप के पास चली गई। उसने कहा, "भाई साहब, यह बच्चा आपको अपना पिता समझकर आपकी अँगुली पकड़े हुए है।"

"अच्छा-अच्छा, कोई बात नहीं है।" अनूप मुस्करा दिया।

तब तक बच्चा अनूप की अँगुली छोड़कर अपनी माँ से जा लिपटा था।

"ओ तो ये बात है! अब समझा!" श्याम के होठों पर कुटिल मुस्कान उभर आई। तब तक चाँदनी चौक आ गया था। वहाँ से वे दोनों अपने-अपने कामों में लग गए। श्याम को शरारत सूझ आई। उसने अनूप के यहाँ फोन किया, "भाभी, पहले मेरी एक भाभी थी। अब दो-दो भाभियाँ हो आई हैं।"

"वो कैसे?" अनूप की पत्नी ने पूछा।

"मैं ठीक कह रहा हूँ, भाभी। अनूप भाई की दो-दो शादियाँ हैं। एक शादी उन्होंने आपके साथ की तो दूसरी फतेहपुरी वाली भाभी के साथ की है।"

"क्या?"

"मैं सच कह रहा हूँ, भाभी। आज मैंने फतेहपुरी वाली भाभी को देखा है। वे तो गजब की खूबसूरत हैं। आज उसी के बेटे को अनूप भाई, चाँदनी चौक घुमा रहे थे।" श्याम बोला।

"क्या मतलब?"

"भाभी, क्या आपको नहीं मालूम कि अनूप भाई ने एक और शादी की हुई है?"

"नहीं तो। मुझे कुछ भी मालूम नहीं है।"

"ठीक है। अनूप घर आएगा तो आप उससे खुद ही पूछ लीजिएगा। आपकी समझ में सब कुछ आ जाएगा।"

"अच्छा, आने दीजिए उन साहबजादे को! आज मैं उनकी पूरी खबर लूँगी।" अनूप की पत्नी के क्रोध का पारा ऊपर-ही-ऊपर चढ़ने लगा।

इतना सुनकर श्याम ने फोन रख दिया।

उधर, अनूप की पत्नी का गुस्सा सातवें आसमान पर चढ़ा हुआ था। पति से लड़ने के लिए उसने कमर कस ली थी। उसने रात का भोजन नहीं बनाया और पलँग पर जा लेटी। आज सब्जी उबलने के स्थान पर वह स्वयं ही उबल रही थी। सौतन का नाम सुनकर उसका दिमाग खराब होता जा रहा था।

अनूप घर आया तो बॉथरूम आदि से फ्रेश होकर वह डाइनिंग टेबल पर खाने का इंतजार करने लगा। जब खाना नहीं आया तो पत्नी को आवाज देने लगा, "रूपा! खाना लगाओ, भई!"

रूपा तो मारे क्रोध के टमाटर की तरह से लाल बनी हुई थी। वह पलँग पर ही लेटी रही। हारकर अनूप ही उसके कमरे में जा पहुँचा। उसने पूछा, "क्या बात है? तुम्हारी तबीयत तो ठीक है न?"

"मुझे क्या होगा? मैं जल्दी मरती भी तो नहीं।" उसने मुँह फुलाकर कहा।

"रूपा, आज तुम्हें यह हो क्या गया है? आज तुम कैसी बातें कर रही हो?"

"मुझे क्या होने वाला है? आपको इससे क्या मतलब?" रूपा उसी प्रकार क्रोध में भरकर बोली, "यहाँ खाना बने या न बने। आप तो खाना खाकर ही आए होंगे।"

"मैं तो डाइनिंग टेबल पर खाने का इंतजार कर रहा हूँ, और तुम कह रही हो कि मैं खाना खा के आया हूँ!"

"मैं ठीक ही तो कह रही हूँ, फतेहपुर वाली ने तो आपको खाना खिला ही दिया होगा।"

"कौन फतेहपुर वाली?" अनूप की आँखों में आश्चर्य उमड़ आया।

"मुझसे कुछ भी छिपा नहीं है। आप बाहर क्या करते हैं, मुझे सब मालूम हो गया है।"

"रूपा, क्यों पहेलियाँ बुझा रही हो। मैंने तो कुछ भी नहीं समझा।" अनूप सिर खुजलाने लगा।

"अरे, आपने तो मेरे अलावा एक दूसरी भी शादी कर रखी है न!" रूपा ने व्यंग्य-बाण छोड़ा, "आप उसी के पास क्यों नहीं रह लेते! वह तो मुझसे भी अधिक सुंदर है।"

"नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।" अनूप ने सफाई दी।

"अब तो वही आपको खाना खिलाएगी, मैं तो बनाने से रही।"

सहसा ही अनूप को ख्याल आया कि यह आग हो न हो उसके मित्र श्याम ने ही लगाई हो! 'ठीक है, मैं श्याम के बच्चे की खबर लेता हूँ।' उसने सोचा। फिर वह रूठी हुई पत्नी को मनाने लगा, "रूपा! रूप की रानी, क्या यह आग श्याम ने तो नहीं लगाई है?"

"देखिए, आप अपने किए पर यों पर्दा न डालिए। किए की सजा तो आपको भुगतनी ही होगी।" रूपा ने तमककर कहा।

"देखो रूपा! तुम्हारे स्वर्गीय माता-पिताश्री और अग्नि के सामने मैंने तुम्हारे हाथ अपने हाथों में लेकर सदा साथ निभाने की कसमें खाई थीं। फिर भी, तुम

ऐसा कहती हो?'' अनूप उसे समझाने लगा।

''अब हमें अधिक न बनाइए। तुम मर्द लोग सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे होते हो। जहाँ भी अच्छी सूरत देखी, उसी के आगे-पीछे होने लगते हो।'' रूपा बोली।

''नहीं, मेरी जान! मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ।'' अनूप उसकी मनुहारें ही करने लगा।

''इसमें जरूर कहीं सच्चाई है। वरना कोई किसी के बारे में ऐसे ही तो नहीं कहता न!'' उसी समय टेलीफोन की घंटी बजने लगी। अनूप ने चोंगा कान से लगाया, ''कौन?''

''तुम्हारा हमदर्द। सो गया क्या?''

''अरे, तुम हमें सोने दोगे, तब न!''

''क्यों, क्या बात हो गई?'' उधर से श्याम ने पूछा।

''मेरे घर में आग लगाकर अब पूछ रहे हो कि क्या हो गया है? तुम मुझसे किस जन्म का बदला ले रहे हो?'' अनूप ने तमतमा कर पूछा।

''ऐसी क्या बात हो आई है भला?''

''तुम्हारी भाभी सारे घर को सिर पर उठाए हुई है।''

''तुमने भी तो ऐसा ही कुछ काम किया है, यार! भाभी की जगह कोई भी होती तो ऐसा ही करती। बेचारी के कोमल हृदय को कितनी ठेस पहुँची होगी! खैर, मैं तुम सबको कल अपने बेटे की 'बर्थ डे' पार्टी में आमंत्रित कर रहा हूँ। मैं सुबह कहना भूल गया था। इसलिए तुम सब जरूर आना। रही बात भाभी के गुस्सा होने की तो उन्हें फोन दो। मैं उन्हें समझा देता हूँ।'' श्याम ने कहा।

''हाँ। जल्दी से समझा, मेरे यार!'' अनूप ने फोन पत्नी को थमा दिया।

''भाभी, कल मेरे बेटे का जन्मदिन है। आप जरूर आना।'' श्याम बोला।

''ठीक है, भाई साहब। मैं...।''

''आप कुछ न सोचिए। आप अनूप भाई के साथ आज की रात चैन से सोइए। अपने दिमाग में कुछ भी टेंशन न लाइए। कल आप आएँगी तो आपके सारे सवालों का निदान हो जाएगा।'' मैं फोन रख रहा हूँ। कहकर श्याम ने फोन रख दिया।

अनूप को जोर की भूख लगी थी। फ्रिज से उसने ब्रेड-बटर निकाला और उसे खाने लगा। मन-ही-मन वह श्याम पर गुस्सा भी होता जा रहा था।

रूपा बिना कुछ खाए ही चादर ओढ़कर सो गई। लेकिन नींद तो उसकी आँखों से कोसों दूर थी। रात भर वह सोचती रही। 'मेरे जीवन का अब उनके लिए कोई मोल नहीं रहा। मेरे होते हुए उन्होंने दूसरी शादी क्यों की?' सीधे-सादे आदमी

किसी बात पर तुरंत ही विश्वास कर लेते हैं। यही हाल उस समय रूपा का भी था!

अनूप ब्रेड-बटर रूपा के पास ले आया। लेकिन उसने कुछ भी नहीं खाया। अनूप भी उसे मनाते-मनाते थक चुका था। वह भी चिढ़कर अपने बिछौने पर जा लेटा। वह यही सोचता जा रहा था कि रूपा को कैसे समझाया जाए जिससे उसे विश्वास हो जाए!

दूसरे दिन अनूप की नींद सुबह देर से खुली। दिन चढ़ आया था और धूप उसके कमरे में पसर गई थी। सर्दी के कारण अनूप का मन अभी बिस्तर से उठने को नहीं हो पा रहा था। फिर भी, उसे दुकान जाना था! आज उसका माथा बहुत भारी लग रहा था। इसलिए वह फिर से सो गया। दोपहर को ही उसकी नींद टूटी। वह नित्य कर्म से निवृत्त हो दुकान में जाने के लिए तैयार हो गया। वह सोचने लगा कि आज की औरतें प्रायः यही सोचती रहती हैं कि वे कहीं-न-कहीं किसी पार्टी में हमेशा जाएँ। उसने रूपा को देखा। वह आईने के सामने खड़ी थी। वहाँ वह अपने को सँवार रही थी। वह डाइनिंग टेबल पर बैठा तो नौकर ने उसे खाना खिला दिया। शाम को मन मारे हुए वह रूपा के साथ श्याम के घर जाने के लिए गाड़ी में बैठ गया।

"अनूप, फतेहपुर वाली भाभीजी को साथ नहीं लाए?" श्याम ने छूटते ही पूछा।

"देखो श्याम! मजाक सीमा के अंदर ही अच्छी लगती है। सीमा से अधिक मजाक मौत को बुलावा दे सकती है।" अनूप ने गंभीर होकर कहा।

"तो बात यहाँ तक जा पहुँची है!"

"जल्दी से अपनी भाभी को समझाओ और मेरा तनाव दूर करो। नहीं तो मेरा माथा फट ही जाएगा। मैं तो उसे समझाकर हार मान चुका हूँ।"

"अच्छा, जरा केक तो कटने दो। फिर मैं तुम दोनों में सुलह करवाता हूँ।"

श्याम के बेटे ने केक काटा, मोमबत्तियाँ बुझाईं, "हैपी बर्थ डे!" के साथ-साथ तालियाँ बजीं। उसके बाद सभी केक को खाने लगे। उसके बाद ऑर्केस्ट्रा पार्टी का कार्यक्रम हुआ। सभी अतिथियों ने रात्रि-भोज किया और वे अपने घरों को जाने लगे। अनूप और रूपा भी श्याम से विदा लेने लगे। तब श्याम ने रूपा को कल की सारी घटना सुना दी। फिर उसने कहा, "भाभी, कल पहली अप्रैल थी न! मैंने यह मजाक 'अप्रैल फूल' के नाम पर ही किया था। मेरे इस मजाक पर आपको कितना संताप झेलना पड़ा। इसके लिए मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ।"

'अप्रैल फूल' का नाम सुनकर रूपा और अनूप एक-दूसरे का मुँह ताकने

लगे। रूपा ने श्याम से तो कुछ नहीं कहा। लेकिन वह पति से क्षमा माँगने लगी। वह कहने लगी, "मैंने आप पर व्यर्थ ही शक किया। इतना बड़ा अपराध किया! आप मुझे माफ कर दें।"

उस समय अनूप ऐसा महसूस कर रहा था जैसे कि प्यार का पिघलता हुआ मोम उसके सारे शरीर पर फैलता जा रहा हो। पत्नी के प्रति उसके मन में और अधिक प्यार उमड़ आया। उसी दशा में उसने रूपा को अपनी बाँहों में भर लिया।

पति-पत्नी के उस प्रेम को देखकर श्याम निहाल होने लगा।

रिश्तेदार

आज पार्वती बहुत रो रही थी, क्योंकि मायके में उसकी छोटी बहन शिप्रा का विवाह होने वाला था और अभी तक उसका पति राम घर नहीं लौटा था। उधर, उसकी सास सोच रही थी कि उसका बेटा इतना कमाता है तो वह अपनी पत्नी के हाथ में भी तो रुपया-पैसा देता ही होगा! उससे वह बहन के लिए लत्ता-कपड़ा खरीद ही चुकी होगी। लेकिन पार्वती के हाथ में ऐसा कुछ न था जिससे वह कुछ खरीद पाती। तब विवश होकर उसे सास से कहना पड़ा, "जिस तरह से आप अपनी बेटी के घर उसकी ननद की शादी में लत्ता-कपड़ा लेके गई थीं, उसी तरह से आपको अपनी बहू की बहन की शादी के लिए भी खरीदने चाहिए थे। लेकिन आपने ऐसा नहीं किया।"

इसी बात को लेकर पार्वती रो रही थी। तभी उसकी ननद के पति महेंद्र बाबू ने उससे पूछा, "क्या बात है बहू जो तुम रो रही हो?"

"जीजाजी, देखिए न! वे अभी तक घर नहीं आए हैं। न हमारे हाथ में पैसा है, जिससे हम बहन के लिए लत्ता-कपड़ा खरीद सकें।" पार्वती का शिकवाभरा स्वर था।

"बहू, तुम्हें इस काम के लिए कितना रुपया चाहिए?" उन्होंने पूछा।

"पाँच सौ रुपये काफी होंगे।" वह बोली।

"ठीक है। मुझसे तुम एक हजार रुपये ले लेना। तुम्हें जब भी सुविधा हो एक-दो महीने में लौटा देना। कल ही तुम अपने बेटे को पैसा लेने के लिए मेरे पास भेज देना।" यह कहकर महेंद्र बाबू अपने घर चले गए।

"ठीक है, जीजा।" पार्वती बोली, "मैं शंभू को भेज दूँगी।"

दूसरे दिन पार्वती का बेटा शंभू महेंद्र बाबू के पास जाकर एक हजार रुपये उधार ले आया। पार्वती ने उससे सारा सामान खरीदा और उसे लेकर बेटे के साथ अपने मायके चल दी।

तीसरे दिन महेंद्र बाबू पार्वती की बहन के विवाह में बाराती बनकर आ पहुँचे। जबकि उस विवाह में उन्हें दोनों ओर से न्योता मिला हुआ था। खैर, सारे बाराती वहाँ पहुँच चुके थे। लेकिन उस बारात में दूल्हा ही गायब था। ऐसे में दोनों

पक्षों के लोग काफी परेशान हो गए थे। उधर, शिप्रा ने जब ऐसी बात सुनी तो वह अपने भाग्य को दोष देने लगी। फिर तो वह भाग्य को लेकर न जाने क्या-क्या सोचती रही। इसका उसे पता तक नहीं चला!

सहसा महेंद्र बाबू की नजरें अपने साले राम पर जा लगीं। उन्होंने उससे कहा, "राम, तुम्हें तो मैंने पहले ही कह दिया था कि तुम्हारी साली की शादी जहाँ हो रही है, वह परिवार पूरा ही राक्षस है। वहाँ पतोहू को दाई से बढ़कर कुछ नहीं समझा जाता। मैंने तुम्हें सलाह दी थी कि यह रिश्ता किसी दूसरी जगह कर लो। नहीं तो लड़की का जीवन ही बर्बाद हो जाएगा।"

"अगर लड़की के भाग्य में ऐसा ही लिखा हुआ है तो मैं क्या कर सकता हूँ, जीजा?" राम ने कहा था। यह सुनकर उस दिन महेंद्र बाबू चुप हो गए थे।

सचमुच महेंद्र बाबू का कथन आज पूरा होते दीख रहा था। क्योंकि इस परिवार में कहीं कोई गार्जियनशिप नहीं थी। न ही आपस में मान-सम्मान के भाव थे। तभी तो बारात से दूल्हा गायब था। उस बारात में दूल्हे की बड़ी बहन माला भी आई हुई थी। यह सुनकर उसने कहा, "जब उसे हम लोगों को ऐसा ही बेइज्जत करना था तो वह यहाँ आकर क्यों लौट गया ?" ऐसा कहकर वह अपने घर जाने के लिए बस पकड़ने चल दी।

माला जब अपने घर पहुँची तो वहाँ दूल्हा बने भाई को देखकर वह आश्चर्य में पड़ गई। उसने मुँह बनाकर कहा, "पंकज, तुम यहाँ आकर अपने बाप-दादा की इज्जत मिट्टी में मिला रहे हो? जब तुम शादी के लिए तैयार हो गए थे तो तुम्हें ऐसा करना चाहिए था? क्या यही दिन देखने के लिए मैं जिंदा हूँ?" उसके मुँह में जो आया, उसने भाई को कहा।

बहन के बिगड़ने पर पंकज को बहुत आत्मग्लानि हुई। ऐसे में वह शादी में जाने के लिए सहमत हो आया। उसने दीदी से साथ चलने को कहा। पर वह नहीं मानी। उसने भी शर्त रख दी कि जब तक वह नहीं चलेगी, वह भी नहीं जाएगा। फिर बहुत मिन्नतें करने के बाद माला तैयार हो गई। उसने इस समय सोचा था भाई की गृहस्थी कम से कम बस तो जाएगी। तब दोनों बहन-भाई उस बारात में चलने पर राजी हो आए।

बारातियों ने जब उन दोनों को अपने बीच देखा तो वे खुश हो आए। तब महेंद्र बाबू बाराती पक्ष वालों से निवेदन करने लगे, "आप लोग जल्दी बारात निकालें।" लेकिन तभी एक अड़चन आ गई। पहले दूल्हा गायब था तो अब उसका बाप रूठा हुआ था। इस पर महेंद्र बाबू ने दूल्हे के बाप से कहा, "रामप्रताप, आप हमें इसलिए कार्ड देकर यहाँ बुलाए थे कि बारातियों की बेइज्जती हो? इतने सारे लोग क्यों बुलवाए?"

"अरे भैये, गले का हार और अंगूठी लड़की वालों को देनी थी। लेकिन... लेकिन अभी तक...। आखिर वे लोग कहाँ हैं?" राम प्रताप बोला।

"देखिए रामप्रतापजी, आप कहाँ जेवर को लेकर बैठे हैं! पैसा-कौड़ी ही आपके लिए सब कुछ है और आपकी इज्जत, मान-प्रतिष्ठा कुछ नहीं है? आपको शर्म नहीं आती?" महेंद्र बाबू ने रामप्रताप को आड़े हाथों लिया।

महेंद्र बाबू पार्वती के मायके वालों को अच्छी तरह से जानते थे। फिर इन लोगों ने भी उन्हें हाथ जोड़कर अपनी गरीबी का बखान किया था। इसीलिए महेंद्र बाबू कन्या पक्ष वालों की पैरवी कर रहे थे।

इज्जत की बात आई तो रामप्रताप तुरंत ही बारात लगाने को तैयार हो गए। थोड़ी देर के बाद बारात निकल पड़ी। उस समय महेंद्र बाबू काफी थक चले थे। वहीं कुछ दूरी पर उनके मामा का घर था। इसलिए वे वहीं जाकर सो गए। हालाँकि बारात निकलते समय सभी ने उन्हें रोका था। लेकिन वे सभी को समझा-बुझाकर सो गए थे। वे इतने थके थे कि बिछावन पर पड़ते ही सुबह के दस बजे ही उनकी नींद खुली थी। तभी उनके मामा से एक आदमी पूछने लगा, "क्या महेंद्र बाबू के मामा का घर यही है?"

"हाँ, क्यों?"

"वहाँ शादी रुकी हुई है। उन्हें जल्दी से बुलवाइए। नहीं तो शादी नहीं होगी।" ऐसा सुनकर महेंद्र बाबू ने उस आदमी के पास आकर पूछा, "क्या बात है, अच्छेलाल?"

"महेंद्र बाबू, आप जल्दी से चलिए। वहाँ बारात रुकी पड़ी है।"

"क्या? मैंने तो सोचा था कि शादी अब तक हो गई होगी।"

"नहीं भैया, अभी तक तो...। आप जल्दी चलिए। वर्ना...।"

"मैं शौच कर लेता हूँ।" महेंद्र बाबू बोले।

"नहीं, ऐसे ही चलिए।" अच्छेलाल जल्दी मचाने लगा।

"अरे, तुम्हारा दिमाग तो ठीक है न! पहले हम शौच करेंगे, तभी कहीं जाएँगे।"

"ठीक है।"

थोड़ी देर बाद शौच आदि से निवृत्त होकर महेंद्र बाबू उस आदमी के साथ वहीं पहुँच गए। उन्होंने देखा कि विवाह की पहली रस्म 'अठमगरा' भी पूरी नहीं हुई थी। जबकि बारात निकलने के बाद ही यह विधि होती है। तब रामप्रताप के पास जाकर उन्होंने पूछा, "क्या बात है, रामप्रताप? अभी तक कैसे रुके हो?"

"ये शादी कैसे होगी? जब तक जेवर नहीं मिलेगा तब तक...।" महेंद्र बाबू ने कुछ सोचा और आदतन चालाकी से बोले, "देखिए! आप लोग जल्दी-से-जल्दी

शादी कीजिए। क्योंकि यह धर्मशाला केवल बारह घंटे तक की ही बुक है। उसके बाद इसे छोड़ देना होगा। फिर कहीं ऐसा न हो कि सारा सामान रोड पर फेंका जाए! तब हमें कुछ न कहिएगा।"

यह सुनकर रामप्रताप और उसके सारे रिश्तेदार विवाह मंडप पर जाने के लिए तैयार हो गए। क्योंकि वे महेंद्र बाबू की बात से डर गए थे। पंकज का चाचा महेंद्र बाबू का जीजा भी लगता था। इसलिए साला-बहनोई के रिश्ते के कारण, महेंद्र बाबू उन पर जल्दी शादी कर लेने के लिए दबाव डाल रहे थे। महेंद्र बाबू के अनाप-शनाप बोलने पर भी वे लोग बुरा नहीं माने। महेंद्र बाबू ने तुरंत लड़की वालों से 'अठमगरा' करने के लिए एक थाली में कपड़ा, फूल, पान, ओखली आदि मँगवाया। लेकिन उस समय वहाँ सब कुछ तो मिल गया। लेकिन ओखली नहीं मिली। तब कोई वहाँ लोहे का खल-मूसल ले आया। उसके बाद जल्दी-जल्दी सारी रस्में करवाई जाने लगीं। कुछ लोगों ने यह भी कहा, 'अठमगरा' इससे होता है? लेकिन महेंद्र बाबू तो सारी रश्में जल्दी-से-जल्दी पूरी करवाना चाहते थे। तब उन्होंने उसी चालाकी से काम लिया, "आजकल इससे भी होने लगा है।"

'अठमगरा' होने के बाद महेंद्र बाबू ने उन लोगों से कहा, "आप लोगों के लिए गाड़ी नीचे खड़ी है। जल्दी से उसमें बैठ जाइए और इस शादी को करवाइए।" यह सुनकर पंकज के साथ के लोग नीचे उतरे। इस प्रकार वे सारे लोग शादी के मंडप में पहुँच गए।

इधर महेंद्र बाबू ने पंडित को पहले ही आगाह कर दिया था, "शादी के मंत्र अब आप पढ़ने शुरू कर दीजिए।"

"लेकिन दूल्हे का बाप नहीं है।" पंडितजी बोले।

"ये देखिए उसका चाचा तो है। वह भी बाप के समान ही होता है। आप जल्दी से काम शुरू कर दीजिए।" महेंद्र बाबू बोले।

पंडितजी वैवाहिक मंत्रों को पढ़ने लगे। जब रामप्रताप आया तो शादी की सारी रस्में पूरी हो चली थीं। यह देखकर वह गुस्सा हुआ। लेकिन फिर स्वयं ही शांत हो गया। क्योंकि वह देर से पहुँचा था। यही उसकी गलती थी।

शादी के दूसरे दिन मड़वा पर भात खिलाने की रस्म थी। इस रस्म में सारे बाराती एक साथ ही भोजन करते हैं। दूल्हा किसी वस्तु को लेने के लिए रूठ जाता है। जब ऐसा समय आया तो महेंद्र बाबू ने दूल्हे से कहा, "पंकज, तुम्हें इस रस्म में अवश्य रूठना चाहिए लेकिन जब भगवान ने तुम्हें दो-दो हाथ दिए हुए हैं तो तुम अपने जीवन में बहुत पैसा कमा लोगे। इसलिए तुम्हें लड़की वालों की ओर से जो भी चालीस-पचास रुपये मिलें, उन्हें ले लेना। उसके बाद भोजन कर लेना।" महेंद्र बाबू ने उसे सारी बातें समझा-बुझाकर कहीं।

महेंद्र बाबू निश्चिंत हो आए थे कि यह रस्म भी जल्दी ही पूरी हो जाएगी। लेकिन इसमें दूल्हे के रूठने के बदले उसका बाप रूठ गया। उसे आने-जाने का तेईस सौ रुपये का भाड़ा लड़की वालों से नहीं मिला था। यह देखकर महेंद्र बाबू ने कहा, "आप लोग खाइए। पैसा मिल जाएगा। हम लड़की पक्ष की ओर से आपको आश्वासन देते हैं।"

"आप तो बाराती बनकर हम सबके साथ आए थे। लेकिन अब लड़की पक्ष की तरफ से कैसे हो आए?"

ऐसी बात सुनकर महेंद्र बाबू हैरानी में पड़ गए। उस समय उन्हें कुछ भी तो नहीं सूझ पा रहा था। उनकी सारी चालाकी गायब हो चली थी। तभी लड़की के पिता ने उन्हें हाथ जोड़कर कहा, "महेंद्र बाबू, आपने यह शादी करवाकर हम पर बड़ा उपकार किया। अब थोड़ा-सा और उपकार कर दीजिए। मैं उनका सारा पैसा कमाकर चुकता कर दूँगा।"

महेंद्र बाबू पसोपेश में पड़ने लगे। क्योंकि लड़की पक्ष की सारी स्थिति से वे अच्छी तरह परिचित थे। इसलिए उनकी समस्या सुलझानी ही थी। वे रामप्रताप के पास जाकर बोले, "अगला बाद में सारा पैसा चुकता कर देगा। सो, अभी आप अपना भोजन कीजिए।"

"यह सब बात नहीं चलेगी। पैसा तो अभी ही देना पड़ेगा।"

"देखिए, पैसा ही तो सब कुछ नहीं होता न!"

"वह हम नहीं जानते।"

"ठीक है। आप पैसा ही चाहते हैं न! तो वह तेईस सौ रुपये मैं दे दूँगा। अब आप भोजन कीजिए।" महेंद्र बाबू ने उन्हें आश्वासन दे दिया।

इस पर रामप्रताप और सारे बाराती भोजन करने लगे।

उधर, महेंद्र बाबू ने वधू पक्ष से एक व्यक्ति को बुलाकर कहा, "आप जल्दी से धर्मशाला में से दरी, जाजिम आदि उठवाना शुरू कर दीजिए। नहीं तो बाद में फिर झमेला हो सकता है?"

यह सुनकर वह आदमी उसी समय धर्मशाला जाकर वहाँ की चीजें उठवाने लगा। जब विदाई का समय आया तो रामप्रताप ने तेईस सौ रुपयों की माँग की। महेंद्र बाबू ने कहा, "अब आप दोनों ही एक-दूसरे के रिश्तेदार हो गए हैं। इसलिए अब एक-दूसरे की इज्जत की रक्षा करना आप लोगों का फर्ज बनता है। फिर रुपया ही बड़ी चीज नहीं है। अरे, इज्जत नहीं है तो लाखों रुपया बेकार है।"

यह सुनकर वर पक्ष के सारे लोग चुप हो आए। फिर महेंद्र बाबू धीरे-धीरे सीढ़ी से नीचे उतर गए। वे सामने से आ रहे एक खाली थ्री-व्हीलर में बैठकर, अपने मामाजी के घर की ओर चल दिए।

वॉकमैन

अनूप को शुरू से ही नई-नई वस्तुएँ खरीदने का बहुत शौक रहा है। जब भी कभी वह किसी नये शहर या नई जगह जाता है तो वहाँ से जरूर कोई-न-कोई नई वस्तु खरीद कर लाता है। इसलिए आज उसके फ्लैट में कई प्रकार की सुंदर-सुंदर चीजें देखने को मिला करती हैं। वे छोटी हों या बड़ी, सभी अद्‌भुत होती हैं। इन चीजों को वह जतन से सँभालता रहता है। ऐसे में उसके घर आने-वाले लोग, इन वस्तुओं की बहुत प्रशंसा किया करते हैं। जब भारत में पंहले-पहल टेलीविजन आया था तो उसने उसे खरीद लिया था। तब उसके घर में दिन-दिन, रात-रात टेलीविजन देखने वालों की अच्छी-खासी भीड़ रहा करती थी!

अनूप एक चाय कपनी में बतौर एजेंट के रूप में कार्यरत था। कंपनी ने उसे मुंबई, गोआ और दिल्ली क्षेत्र दिए। यहाँ जाने पर वह बहुत खुश हुआ था। कंपनी के काम के लिए वह बाजारों में घूमता रहता। जब भी, जहाँ भी उसे कोई नई चीज मिलती, उसे वह खरीद लेता। एक दिन 'गोआ' में उसे सोनी कंपनी द्वारा निर्मित 'वॉकमैन' दिखाई दिया। वह नया-नया ही निकला था। उस पर नजर पड़ते ही झट से उसने उसे खरीद लिया। एक दिन अपने फ्लेट में बैठा हुआ वह उसी को सुन रहा था। इस पर उसे पत्नी ने टोका था, "आप कब से कम सुनने लगे हैं? कुछ दिन पहले तो आप बिल्कुल ठीक थे। लेकिन आजकल आपको क्या हो गया है?"

पत्नी की बात सुनकर अनूप मन-ही-मन मुस्करा दिया था। तब पत्नी को चिढ़ाते हुए वह बोला था, "क्या कहें! डॉक्टर ने यह मशीन दी है। उन्होंने कहा है कि अगर आप अपना कान ठीक रखना चाहते हैं तो इसे हमेशा लगाए रहें। इससे कान खराब नहीं होंगे।"

"हे भगवान! यह रोग मुझे क्यों नहीं हुआ! मेरे प्राणनाथ को यह रोग कैसे लग गया? मैं थोड़ा कम भी सुन लूँगी तो कोई दिक्कत नहीं होगी। लेकिन ये तो बाहर रहते हैं। इन्हें कितनी दिक्कत होती होगी! ऐसा तुमने कभी नहीं सोचा?" पत्नी गिला-शिकवा करने लगी थी।

"अब तकदीर में जो लिखा है उसे तो कोई मिटा नहीं सकता। वह तो हमें

ही भोगना होगा न!" अनूप बोल पड़ा था।

"नहीं-नहीं, भगवान! इनका दुख मुझे दे दो: मैं सब सह लूँगी। लेकिन.....।"

"अच्छा, ऐसी बात है!"

"हाँ, स्वामी।"

"ठीक है।" फिर दो-तीन दिन बाद, उसने अपनी पत्नी वीणा को बुलाकर कहा, "लो, इसे कान में लगाकर तुम भी तो सुन लो। देखो तो कैसा लगता है?"

"मैं क्यों सुनूँ जी? मुझे तो वैसे ही ठीक सुनाई देता है।" वीणा बोली थी।

"अरे भई, देखो तो...।" यह कहकर अनूप ने पत्नी के दोनों कानों में 'वॉकमैन' के एयरफोन डाल दिए थे। तब उसे किसी फिल्म के गीत सुनाई देने लगे थे। वीणा को अच्छा लगा था। वह सब समझ गई थी। पति को देखकर वह मुस्करा दी थी।

"अब तुम्हें समझ में आया न कि यह क्या चीज है?" अनूप ने पूछा था।

"बिलकुल। लेकिन आपने पहले यह बात क्यों नहीं बतलाई?" वीणा ने पूछा था।

"तुमने जाँचने की कभी कोशिश ही नहीं की थी। फिर मैं कैसे बतलाता?"

"लेकिन मैंने तो मिसेज शर्मा को इसके संबंध में कुछ और ही बात कह दी है।"

"क्या?"

"यही कि जब भी इनसे बात करें, ऊँचे स्वर में किया करें। क्योंकि इन्हें कम सुनाई देता है।"

"ओ! तो यह बात है!" अनूप मुस्करा दिया था।

बाद में अनूप के घर में न रहने पर मिसेज वीणा इस 'वॉकमैन' को लेकर सारे दिन उसे अपने कानों से लगाए हुए फिल्मी गीतों का आनंद लिया करती। जिन गीतों को वह टेपरिकॉर्डर पर सुना करती, अब उन्हें 'वॉकमैन' पर सुना करती। यह उसे अच्छा लगता था। तभी एक दिन मिसेज मेहता उसके पास चली आई। जब उसने ड्राइंगरूम में वीणा को कानों में 'वॉकमैन' लगाए देखा तो आश्चर्य में पड़ गई। इतना तो उसे मालूम था कि जो कम सुनते हैं वे अपने कानों में मशीन लगाए हुए होते हैं। यह पता उसे तब लगा था जब उसका अपना मकान बन रहा था। वहाँ एक राज मिस्त्री इसी प्रकार के यंत्र को अपने कानों में लगाए हुए था। मिसेज मेहता ने तब उससे पूछा भी था। जिससे मिस्त्री ने बताया था कि उसे कम सुनाई देता है। मिसेज वीणा को भी ठीक से सुनाई नहीं पड़ता होगा। तभी तो वह यह मशीन लगाए हुई है। इसलिए वह हैरानी से वीणा को ही

देखती जा रही थी।

"आप मुझे यों एकटक कैसी देख रही हैं? क्या बात है?" वीणा ने पूछा था।

"आपको कम सुनाई दे रहा है न? ऐसे में आपको कितनी दिक्कत होती होगी!"

यह सुनकर वीणा मुस्करा दी थी। वह बोली थी, "हाँ! आजकल के मर्द औरत को अपने पैर की जूती समझते हैं। अब तो जब से मैं बहरी हुई हूँ, तब से कई काम की बातें अनसुनी कर देती हूँ। फिर भी, वे कुछ नहीं बोलते। समझते होंगे कि मैं बहरी हो गई हूँ। इसलिए इन दिनों मैं बहुत सुकून महसूस किया करती हूँ। मैं तो तुम्हें भी यही राय दूँगी कि तुम भी ऐसी ही मशीन ले लो। जिससे तुम अपने पति पर मनमानी कर सको।" वीणा ने कहा था।

"लेकिन बहन! दो-चार दिन पहले तो तुम ठीक-ठाक थीं।" मिसेज मेहता ने चिंतित स्वर में पूछा, "अब तुम्हें क्या हो गया है? तुम्हारे कान में चोट तो नहीं लगी?"

उन दोनों में बातचीत चल ही रही थी कि तभी वहाँ दो-चार दूसरी पड़ोसनें भी आ पहुँची थीं। उन्होंने जब वीणा के बारे में सुना तो वे सभी दुखी होने लगीं। वे सभी उसके ठीक होने के लिए ईश्वर से प्रार्थनाएँ करने लगीं, "हे भगवान! वीणाजी के कान ठीक कर दो। हम तुम्हें प्रसाद चढ़ाएँगी।" इस प्रकार किसी ने ग्यारह, किसी ने इक्कीस, तो किसी ने इक्यावन रुपये के प्रसाद चढ़ाने की मनौती माँगी थी। इस बीच वीणा का नौकर उन्हें दो बार चाय-नाश्ता करवा चुकी थी।

वीणा तो मन-ही-मन मुस्कराती जा रही थी। वह भी उन्हीं की हाँ-में-हाँ मिलाती जा रही थी। उन महिलाओं ने वीणा को 'झाड़-फूँक' करवाने की भी सलाह दी थी। तब बहुत ही दुखी मन से उसने उन्हें विदा किया था।

दो दिन बाद सभी पड़ोसनें अपने हाथों में प्रसाद के दोने लिये हुए वीणा के यहाँ चली आई थीं। उन्होंने कहा था, "लो बहन! अब तुम्हें रोग से जल्द छुटकारा मिल जाएगा। हम लोग मंदिर में प्रसाद चढ़ाकर आ रहे हैं।" यह कहकर वे उसे प्रसाद देने लगी थीं। तब वीणा ने अपना माथा ठोक लिया था।

पहली बार वीणा ने अपना माथा तब ठोका था जब मिसेज वर्मा ने उसके पास आकर पूछा था, "बहनजी! बहनजी! आपके यहाँ मैं बहुत अच्छा-अच्छा अचार शीशियों में देखा करती हूँ। आप इसमें क्या डालती हैं?"

"कुछ नहीं। मैं तो अचार में तेल और नमक के साथ-साथ उसे धूप दिखला देती हूँ। इसके सिवाय कुछ भी तो नहीं करती।" वीणा ने बताया था।

मिसेज वर्मा ने भी वैसा ही किया था। एक हफ्ते बाद वे फिर से उसके पास

आई थीं। उसने कहा था, "बहनजी! मैंने तो अचार आपके कहे अनुसार ही डाला था। लेकिन मेरा तो सारा अचार खराब हो गया है।"

"तुमने अचार कैसे लगाया था?"

"आम के साथ तेल-नमक डाल दिया था। मैं बाजार से धूप भी ले आई थी। अचार को सुबह शाम मैं धूप दिखला देती। फिर भी, वह खराब हो गया। उसमें भूआ लग गया है।" मिसेज वर्मा बोली थी।

तब वीणा ने अपना माथा ठोक लिया था। उसकी अक्ल के बारे में वह घंटों तक सोचती रही थी।

आज उसके जीवन में फिर से वही बात हुई। तब वीणा ने मुस्करा कर सभी महिलाओं के कानों में एयरफोन लगा दिए। फिर तो वे अपनी-अपनी पसंद के गीत और भजन सुनने लगी थीं। जब 'वॉकमैन' का रहस्य खुला तो वे महिलाएँ हक्की-बक्की ही रह गईं। कभी वे 'वॉकमैन' को देखतीं तो कभी भगवान के प्रसाद के दोनों को।

एक दिन अनूप अपने क्षेत्र की सभी पार्टियों के चाय के ऑर्डर्स लेकर अपने घर लौटा तो उसके पापा का फोन आ गया, "अनूप, जल्दी से घर आ जाओ। माँ की तबीयत खराब है।"

"ठीक है। मुझे जो भी पहली गाड़ी मिलेगी, मैं उसी से आ रहा हूँ।" कहकर वह घर जाने की तैयारी करने लगा।

अनूप रेलवे स्टेशन पहुँचा तो उस समय प्लेटफार्म पर 'वैशाली एक्सप्रेस' खड़ी थी। कंधे पर एयर बैग लटकाए हुए वह एक कंपार्टमेंट में बैठ गया। वह अचानक ही जा रहा था इसलिए टिकट नहीं ले पाया था। उसने सोचा रास्ते में टी. टी. से टिकट बनवा लेगा। उसे इस समय रह-रहकर माँ की याद आ रही थी। जब उसका मन उकताने लगा तो उसे याद आया कि उसके पास 'वॉकमैन' है। क्यों नहीं उसका उपयोग किया जाए। उसने उसके एयरफोन अपने कानों से लगा दिए। अनूप को देखकर कंपार्टमेंट के यात्री आपस में बातें करने लगे।

"देखो न बेचारा कितना सुंदर है! लेकिन भगवान ने बहरा बना दिया है।"

"अरे भई, भगवान भी बहुत निष्ठुर होता है। वह किसी को सुखी नहीं देख सकता। आदमी में कोई-न-कोई नुक्स लगा ही देता है। जिससे आदमी हमेशा दुखी रहे।"

इस प्रकार यात्री लोग उसके प्रति सहानुभूति प्रकट कर रहे थे।

अनूप यात्रियों की उन हरकतों पर मुस्करा रहा था। वह तो मजे-मजे से गीत सुनता जा रहा था। जब उससे नहीं रहा गया तो उसने बारी-बारी से उन यात्रियों के कानों में एयरफोन लगाये। गाने सुनकर उन्हें अच्छा ही लगा। ऐसे में

उनकी धारणा बदल गई।

दूसरी सुबह अनूप ट्रेन से अपने शहर जा पहुँचा। एक रिक्शे में बैठकर वह घर की ओर हो लिया। जहाँ उसे मालूम हुआ कि माँ को डॉक्टर देख गया है। जिसकी वह दवाई ले रही है। इसलिए उसकी माँ पहले से ठीक है।

एक दिन अनूप घर के ड्राइंगरूम में बैठा हुआ 'वॉकमैन' से गीत सुन रहा था। तभी वहाँ उसके पापा चले आए। उसे उस हालत में देखकर उन्होंने पूछा, "अरे! तुम्हारे कान को क्या हो गया है?"

अनूप उसी प्रकार गीत सुनता रहा।

उसके पापा ने फिर से अपना प्रश्न दोहरा दिया। उन्होंने पूछा, "कान खराब हैं क्या?"

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। ये तो 'वॉकमैन' है, जिससे मैं गीत सुन रहा हूँ।" अनूप ने कहा।

"क्यों झूठ बोल रहा है?" अपने रोग को हमसे क्यों छिपा रहा है? कोई रोग छोटा नहीं होता। इसलिए बेटे, तुम डॉक्टर को अपने कान दिखलाओ।"

"नहीं, पापा। अनूप ने उनकी धारणा का खंडन कर दिया। आप जो सोच रहे हैं, वो बात नहीं है।"

"तो फिर क्या बात है?" पूछकर उन्होंने उस 'वॉकमैन' के एयरफोन को अपने कानों पर लगा लिये। वे मजे से गाने सुनने लगे। तब उन्होंने आनंदित होकर कहा, "ऐ लड़का! सुनने में बड़ा अच्छा लगता है। इसे कितने में खरीदा?"

उधर, अनूप मूक दर्शक बना हुआ पिताश्री के कार्यकलापों को देखने लगा। वह सोचने लगा, "लोग नई चीज को देखकर पहले-पहल इसी प्रकार चौंका करते हैं।" उसके बाद वह 'वॉकमैन' के गीत सुनने में डूब गया।

रांग नंबर

सहसा टेलीफोन की घंटी बज उठी। अमित ने टेलीफोन का रिसीवर उठाकर कान से सटाया, "हलो! अमित बोल रहा हूँ।"

"अरे अमित! आजकल तुम कहाँ रहते हो? हम कितने दिनों से तुम्हारा इंतजार करते आ रहे हैं! पिछले सप्ताह भी तुम इस प्रिया को कहकर नहीं आए। भला ऐसे कैसे काम चलेगा? आखिर तुम्हारे साथ, तुम्हारे पास बैठकर बातें किए हुए आज कितने दिन हो गए हैं! लेकिन तुम हो कि आते ही नहीं।" उधर से प्रिया ने ताने-उलाहने दिए।

"नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। कल सुबह भेंट करते हैं।" अमित ने कहा।

"पक्का?"

"हंडरेड परसेंट पक्का!"

"लेकिन देख लेना, जब तुम नहीं आए तो अच्छी बात नहीं होगी। अच्छा तुम्हीं बताओ कल तक तो तुम मुझसे बात किए बिना पल भर भी नहीं रह सकते थे। लेकिन अब क्या हो गया है कि भेंट तक नहीं करते! तुम्हारी यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती।" प्रिया ने कहा।

एक अनजान लड़की की ये बातें सुनकर अमित को आश्चर्य ही हुआ। फिर भी, वे चुप ही रहे। उन्होंने मन-ही-मन कहा कि इस प्रेमिका को कुछ दिन यों ही टरकाते रहें। बातचीत का सिलसिला जारी रख कर मजे लेते रहें। इसलिए वे उसकी बातचीत में हाँ-हूँ करते रहे। प्रिया कहने लगी, "क्या तुम हाँ-हूँ ही करते रहोगे? अब तो तुम बिलकुल ही बदल गये हो। लगता ही नहीं कि तुम वही अमित हो!"

"नहीं तो, ऐसी कोई बात नहीं है।"

"बात जरूर है। तुम्हें याद है जब पिछले साल अपने कॉलेज का ग्रुप टूर शिमला गया था! वहाँ तुम कितना हंगामा करते रहे थे! याद है न?"

"हाँ-हाँ, मुझे सब कुछ याद है।"

"हम दोनों बर्फ पर स्केटिंग करते हुए एक-दूसरे को दिल दे बैठे थे। उस

समय कितना मजा आया था! वहाँ दोनों प्रेमी-प्रेमिकाओं की तरह से घंटों बतियाते रहे। लेकिन अब तो तुम जैसे मुझसे बोर ही होने लगे हो। इसीलिए तो मुझसे नहीं मिलते। है न?''

''नहीं-नहीं, ऐसा कुछ नहीं। मैं थोड़ा-सा थका हूँ। अभी-अभी बाजार से आया हूँ न! इस चिलचिलाती धूप में बहुत थक गया हूँ।'' अमित बोला।

''अच्छा-अच्छा। इस समय तुम आराम करो। कल बात करेंगे।''

''ठीक है।'' कहकर अमित ने चोंगा क्रेडिल पर रख दिया।

दूसरे दिन संध्या-समय फिर से फोन की घंटी बजने लगी। संयोग से अमित ने ही फोन उठाया। उधर से प्रिया ने कहा, ''अमित, तुमने कहा था न कि सुबह हम आएँगे। लेकिन तुम नहीं आए। इन दिनों कुछ ज्यादा ही बिजी हो क्या?''

''हाँ, प्रिया! मैं आता लेकिन मुझे थोड़ा-सा भी टाइम नहीं मिला।''

''अच्छा तो साहबजादे साहब! आपको टाइम ही नहीं मिलता! कॉलेज के जमाने में तो हमारे इर्द-गिर्द चक्कर काटा करते थे। अब हमारे लिए थोड़ी-सी भी फुर्सत नहीं है! ठीक है, ठीक है। शादी से पहले तुम मुझे इतना तड़पा रहे हो। शादी के बाद मैं भी तुम्हें खूब तड़पाऊँगी। सब तुम याद रखना। तब मैं गिन-गिनकर तुम्हें...।''

''अरे बाबा! ऐसा न करना। नहीं तो हम तुम्हारे बिना कैसे जिएँगे?'' अमित ने उसकी बात, बीच में ही काटकर बोल पड़ा।

''अभी कैसे जी रहे हैं भलेमानस? वैसे ही उस समय भी जी लेना।''

''ऐसा न करना, प्रिया! मेरे बारे में तो तुम्हें सोचना ही होगा।'' अमित बोला।

तभी प्रिया के डैडी आ गए। प्रिया ने सकपकाकर कहा, ''अच्छा अमित, डैडी आ रहे हैं। कल बात करूँगी। लेकिन कल शाम तुम पार्क में अवश्य ही मिलना। वहाँ मैं तुम्हारा इंतजार करूँगी।''

''ठीक है।'' कहकर अमित ने फोन रख दिया।

''किसका फोन था?'' अमित की पत्नी ने पूछा।

''प्रिया का था।''

''कौन प्रिया?''

''अरे, तुम नहीं जानतीं। वह अब तक दो बार फोन कर चुकी है। संयोग से उसके प्रेमी का नाम भी अमित ही है। कुछ ऐसा ही लगता है। लेकिन बार-बार उसका रांग नंबर यहाँ कैसे लग जाता है? मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है।'' अमित मुस्करा दिया।

"तो खूब मजे ले रहे हैं?"

"हाँ-हाँ, मजे तो ले ही रहा हूँ। सोचते हैं उसको अपने करोलबाग वाले ऑफिस में स्टेनो की नौकरी दे दें।" अमित ने पत्नी को देखा, "कैसा रहेगा?"

"ठीक रहेगा। रख लीजिए।" माधुरी ने कहा।

"तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं?"

"मुझे क्या आपत्ति हो सकती है। आप जिसे चाहें, उससे मिलिए, जिसे चाहें रखिए।"

"तुम्हें कोई प्राब्लम तो नहीं होगी?"

"नहीं बाबा! कह तो दिया कि आपकी खुशी ही मेरी खुशी है।"

"भाभी, आप तो हमेशा ही भैया की खुशी का ख्याल रखती हैं। हमारी खुशी की तो बात ही नहीं करतीं।" तभी माधुरी का देवर श्रीकांत, अंदर उसके पास आकर कहा।

"कैसी खुशी, देवर जी?" माधुरी देवर की ओर पलटी।

"मैंने कितनी बार कहा है कि आप अपनी छोटी बहन से हमारी शादी करवा दें।" श्रीकांत ने शिकायत की, "कभी आपने हमारी भी सुनी है?"

"मैंने कब रोका है? जाइए, उसे डोली में बिठलाकर ले आइए।" वह मुस्करा दी।

"लेकिन उनसे मेरी पैरवी आपने कभी भी नहीं की। अगर आप मेरी थोड़ी भी पैरवी करतीं, तो इस कुँवारे की अब तक शादी हो चुकी होती।"

"देवरजी, आप तो ऐसे कह रहे हैं जैसे मेरे मायके में आपको कोई न जानता हो।"

"बस-बस! हो गई देवर-भाभी की लड़ाई! अरे भई, रेखा को श्रीकांत इतना ही चाहता है तो क्यों नहीं उसकी शादी कर देतीं! श्रीकांत भी खुश और तुम्हारे परिवार वाले भी खुश!" अमित अचानक बोल पड़ा।

"हाँ-हाँ! हमारी बहन इतनी सस्ती है न! उसके लिए क्या दुनिया में कोई और लड़का नहीं है? हमारे देवरजी तो अभी नौ-छौ का भी ज्ञान नहीं रखते। ऐसे में वे हमारी बहन से शादी करेंगे?" माधुरी ने नाक-भौं सिकोड़कर कहा।

"श्रीकांत, तुम अपनी भाभी से नौ-छौ सीख लो। तभी यह संभव हो सकेगा।" अमित मुस्कुराते हुए कहकर अपने ऑफिस चल दिए।

एक दिन फिर प्रिया का फोन आ गया। इस बार उसे अमित की पत्नी ने ही उठाया। उधर से पूछताछ हुई, "अमितजी हैं क्या?"

"नहीं।"

"आप कौन बोल रही हैं?" प्रिया ने पूछा।

"मैं उनकी एक रिलेटिव बोल रही हूँ।" माधुरी उसे बनाने लगी।

"अच्छा! वे कहीं बाहर गए हुए हैं क्या?"

"कुछ गेस्ट आने वाले हैं। वे उन्हें लेने गए हैं।"

"ठीक है। आप उन्हें कह दीजिएगा कि प्रिया का फोन आया था।"

"ठीक है।"

"भाभी, किसका फोन था? आप बड़ी देर से बातें कर रही थीं।" तभी वहाँ श्रीकांत ने आकर पूछा।

"है कोई हमारी सहेली।"

"सहेली? कैसी सहेली? सहेली की बात मैंने पहले तो कभी नहीं सुनी। आज इस सहेली ने कैसे जन्म ले लिया?"

"उसने जन्म नहीं लिया है। वो तो अब किसी पर डोरे डाल रही है।" माधुरी यह कहकर मुस्करा दी।

"भाभी, आप भी कैसी-कैसी बातें करने लगती हैं।"

"मैं ठीक ही तो कह रही हूँ।"

"भाभी, सच-सच कहिए न कि क्या बात है?"

तब माधुरी ने हँसकर श्रीकांत को प्रिया की सारी बातें बतला दीं। वह कहने लगी, "वह लड़की 'रांग नंबर' पर तुम्हारे भैया से बार-बार टकरा जाती है। संयोग से उसके प्रेमी का नाम भी अमित ही है। हमें लगता है कि प्रिया का प्रेमी कहीं यही अमित तो नहीं है?"

सुनकर श्रीकांत खिलखिला कर हँस पड़ा। फिर वह गंभीर हो आया, "भाभी, यह कैसे संभव हो सकता है? प्रिया जब-जब फोन करती है, तब-तब अमित भैया ही टकरा जाते हैं।"

"हाँ। यही बात तो मेरी भी समझ में नहीं आती। खैर, दोनों की ट्यूनिंग खूब मिल रही है। अब देखें यह ट्यूनिंग कब तक मिलती रहती है।" माधुरी बोली।

"भाभी, कहीं भैया प्रेम का पेंग बढ़ाकर आपको बेवकूफ तो नहीं बना रहे हैं? कहीं ऐसा न हो कि वे एक दिन यहाँ आपकी सौत लेकर आ जाएँ!" श्रीकांत बोला।

"नहीं देवरजी, ऐसी बात तो मुझे नहीं लगती। हाँ, तुम्हारे भैया के मन में कोई पाप छिपा हो तो दूसरी बात है।" माधुरी ने कहा।

"हो सकता है। लेकिन...।"

"लेकिन क्या? तुम मर्द लोग सब एक ही तरह के होते हो। जहाँ अच्छी-सी मिठाई देखी वहीं लार टपकाने लगे।" यह कहकर माधुरी मुस्कुरा दी।

"हाँ, ऐसा तो जरूर है। आप अच्छी मिठाई नहीं हो क्या? सुनते हैं कि कॉलेज के जमाने में आप पर बहुत सारे लड़के मरते थे। आप उन दिनों कॉलेज में 'स्वीट क्वीन' के नाम से जानी जाती थीं।" श्रीकांत भी मुस्कराकर बोल पड़ा।

"देवरजी, अब आप हमसे दिल्लगी करने लगे हैं!"

तभी कॉलबेल बजी। ऐसे में दोनों चौंक पड़े। माधुरी दरवाजा खोलने के लिए चल दी। श्रीकांत गार्डन की ओर चल दिया।

बाहर अमित थे। वे माधुरी से पूछने लगे, "इतनी देर कैसे लगा दी?"

"नहीं, ऐसी कोई बात तो नहीं है?"

"अच्छा-अच्छा, ठीक है।" मुझे जोर की भूख लगी है, जल्दी से नाश्ता कराओ।" अमित यह कहकर जल्दबाजी मचाने लगा।

"अभी ला रही हूँ।" कहकर माधुरी किचेन की ओर चल दी।

अमित फ्रेश हो गए थे। डाइनिंग टेबल पर आकर वे अखबार देखने लगे। तभी वहाँ माधुरी गर्मागर्म पकौड़ियाँ और चाय ले आई। वे नाश्ता करने लगे। उसी समय टेलीफोन की घंटी बजने लगी। अमित ने लपककर चौंगा कान से सटा लिया, "हलो!"

"...।"

"हाँ, मैं अमित बोल रहा हूँ। बोलो, क्या बात है?"

"डैडी ने मेरी शादी पक्की कर दी है।" उधर से प्रिया शिकवा करने लगी, "मैंने तुम्हें कितना बुलवाया था। लेकिन तुम मुझे एक बार भी नहीं मिले।"

"क्या कहा? तुम्हारी शादी पक्की हो गई?" अमित ने चौंककर पूछा।

"तुम भी तो यही चाहते थे न कि मैं तुम्हारी बाँह छोड़कर किसी दूसरे की बाँह में समा जाऊँ!" उधर से उलाहना दिया गया।

"देखो प्रिया, आजकल..." अमित उसे बनाने लगे।

"हाँ-हाँ, मैं जानती हूँ कि आजकल तुम बहुत बिजी रहने लगे हो!"

"अब क्या होगा, प्रिया? हम दोनों ने जो सुनहरे सपने देखे थे, उनका क्या होगा?" अमित ने चिंता जतलाई।

"होना क्या है! तुम आराम की जिंदगी बिताओगे और मैं तुम्हारे प्यार में बिना पानी की मछली की तरह से तड़पती ही रहूँगी।" प्रिया का गला रुँध आया था।

"नहीं-नहीं, ऐसा नहीं होगा।" अमित बोले। तब तक फोन कट गया।

दस-पंद्रह दिन के बाद एक दिन फिर से अचानक टेलीफोन की घंटी बजने लगी। उसे घर के नौकर ने ही उठाया, "हलो! कौन हैं?"

"अमित बाबू हैं?" उधर से प्रिया ने बेजारी से पूछा।

नौकर वहीं से चिल्ला कर बोला, "मालकिन! उसी लड़की का फोन आया है, जो तीन महीने से आपको परेशान करती आ रही है।"

यह सुनकर माधुरी दौड़ी-दौड़ी फोन के पास आकर बात करनी चाही। लेकिन तब तक फोन का संपर्क कट चुका था।

माधुरी सब कुछ समझ गई। उनके नौकर ने 'रांग नंबर' वाली बात के रहस्य को चीखकर उजागर कर दिया था। हो सकता है प्रिया को अपनी गलती का अहसास हो आया हो! तभी तो उसने फोन रख दिया था!

बदलाव

रंजीत अपने पिताश्री श्रीकांत बाबू से बेहद परेशान रहा करता है। हालाँकि घर के खाने-पीने का सारा खर्चा पिताश्री अपने खेतों को जोतकर चलाया करते हैं। लेकिन वे दाल-चावल, गेहूँ आदि के अलावा घर के साबुन-तेल, कपड़ा-लत्ता आदि सामान की व्यवस्था नहीं करते। इन सब चीजों को उनका बेटा रंजीत ही खरीदा करता है। फिर भी श्रीकांत बाबू अपना सामान समाप्त हो जाने के बाद बिना किसी हिचक के बेटे के सामान का प्रयोग करने लगते हैं। इससे रंजीत बहुत परेशान रहा करता है।

अब उसी दिन की बात ले लीजिए न! रंजीत बॉथरूम में गया तो उसके पिताजी उसी के टूथब्रश से मंजन कर रहे थे। यह देखकर उसे हैरानी हुई थी। पिता की खातिर वह चुप रहा था। तब उसने नौकर से अपने लिए दूसरा टूथब्रश मँगवाया था। जब उसने शेविंग का सामान देखा तो उसमें भी एक नयी ब्लेड नदारद थी। वह समझ गया था कि पिताश्री ने ही उसका उपयोग किया होगा। जब उसने कमरे में गंदी चादर देखी तो उसका दिमाग ही भिन्ना गया था। इस पर उसने पत्नी को बुलाकर डाँटा था, "ये गंदी चादर कैसी है?"

"मैंने तो आज ही धुली हुई चादर बिछाई थी। लेकिन बाबूजी उसे उतारकर अपने बिछावन पर ले गए हैं।" पत्नी ने अपनी ओर से सफाई दी।

"ठीक है। ठीक है।" यह कहकर वह अपने क्रोध को पी गया था।

रंजीत का इस प्रकार चुप रहना दिन-प्रति-दिन सिरदर्द ही बनता गया।

अब तो श्रीकांत बाबू रंजीत की फ्लाइंग शर्ट, पैंट, गंजी, मोजे आदि को भी बेफिक्री से पहनने लगे हैं। एक बार तो बड़ा ही अजीब वाकया हुआ था। मनू बाबू के बेटे की शादी में दोनों ही बाप-बेटे आमंत्रित थे। वहाँ रंजीत की नजरें अपने पिताश्री के सूट पर जा लगी थीं। उस समय वे पंडाल में इधर-उधर चहलकदमी कर रहे थे। वे उसी का सूट पहने हुए थे। पर उसने सोचा उन्होंने अपने लिए कोई नया सूट सिलवाया होगा। इसलिए वह चुप था। घर आकर उसने इस बात की चर्चा अपनी पत्नी लक्ष्मी से की थी। उसने कहा था, "आज तो पिताजी खूब बढ़िया सूट पहने हुए थे। उन पर वह जँच भी खूब रहा था। सचमुच

अब वे अपने पहनने-ओढ़ने का ध्यान रखने लगे हैं।"

"क्या कहा? सूट और वह भी आपके पिताजी सिलवाएँगे? वो तो आपका ही सूट है जिसे आपने पिछली सर्दी में सिलवाया था।"

"क्या?" यह सुनकर वह भौंचक रह गया था।

"जी हाँ।"

"लेकिन ऐसे कैसे हो सकता है? वह सूट तो मैंने अपनी आलमारी में रखा था। सोचा, जब कहीं बाहर जाऊँगा तभी पहनूँगा।"

"लेकिन ऐसा ही है। मैंने ही उन्हें आलमारी से निकाल कर दिया था।"

"ये तुम कह रही हो?" वह पत्नी को अविश्वसनीय दृष्टि से देखने लगा था।

"मैं सही कह रही हूँ।"

सुनकर रंजीत ने अपना माथा ही पीट लिया था।

अब तो रंजीत की यह दशा हो आई है कि जब भी वह पहनने के लिए लक्ष्मी से कपड़े माँगता, तो उनके बटन, हुक आदि टूटे हुए मिलते। जिससे उसका मन भिन्ना उठता। तब वह पत्नी पर बिगड़ कर कहता, "अरे भई, तुम कपड़ों को भी ठीक से नहीं रख सकतीं। दिन भर खाना बनाने के अलावा तुम्हारे पास और क्या काम है? तुम्हारी सेवा के लिए मैंने नौकर रखे हुए हैं। फिर भी, तुम मेरे कपड़ों को ठीक से नहीं सँभाल सकतीं!"

"मैं तो आपके कपड़ों को ठीक से ही रखती हूँ।"

"अरे तुम क्या रखोगी! सामने का बंगाली परिवार है। वे लोग कितने सलीके से पहनते-ओढ़ते हैं। कम आमदनी होने पर भी वे लोग हर साल बाहर जाकर हवा-पानी बदल आते हैं। वे लोग कम में ही ठाट से रहते हैं। मैं दस-बारह हजार रुपया महीने कमाता हूँ फिर भी, हमारी हालत कंगालों जैसी रहती है।" रंजीत ने पत्नी को अच्छा-खासा भाषण ही पिला दिया।

लक्ष्मी सोफे पर बैठकर फफकने लगी। तभी सास की नजर उस पर पड़ी। वह प्यार से बोली, "बहू, क्या बात है? क्यों रो रही है?"

"नहीं-नहीं, माँजी!" सास का स्नेह पाकर वह और भी रोने लगी।

"अरी बहू, तुम्हें क्या हुआ है? कहीं रंजीत ने तो कुछ नहीं कह दिया?"

"देखिए माँजी, मैं दिन-रात इस घर का काम करती रहती हूँ। फिर भी ये हैं कि मुझे भला-बुरा कहते रहते हैं।"

"क्यों रे रंजीत! बहू को क्यों डाँटता-फटकारता रहता है?" सास रंजीत की ओर घूमकर बोली, "जानता नहीं कि आने वाले बच्चे पर इसका क्या असर पड़ेगा?"

"माँ, तेरी बहू को तो रोने का बस बहाना चाहिए।" रंजीत ने झुँझलाकर कहा।

"चुप कर, रंजीत बेटे! तू क्या जाने कि औरत का दिल कैसे टुनक-मिजाज हुआ करता है!"

सास की उस तरफदारी से लक्ष्मी सास के गले लग गई। वह उसकी चापलूसी करने लगी, "माँजी, आप कितनी अच्छी हैं! अब आप ही बताइए कि धोबी इनके कपड़ों के बटन तोड़ देता है तो मैं क्या करूँ?"

"तुम क्या करोगी? अरे जब वह देने आता है तो तुम उन्हें देख नहीं सकतीं?" रंजीत ने झुँझलाकर कहा।

"मैं देखती तो हूँ।" कहकर लक्ष्मी फिर से रोने को हुई।

"बहू, अब चुप भी कर।" रंजीत तो बात का बतंगड़ ही बना देता है।" यह कहकर सास उसका सिर सहलाने लगी।

रंजीत की नजरें दीवार-घड़ी पर जा लगीं। साढ़े नौ बजने को थे। तब उसने हड़बड़ी मचाते हुए कहा, "मुझे देर हो रही है। अब मैं ऑफिस जा रहा हूँ।"

"अरे, खाना तो खाते जाइए!" लक्ष्मी बोली।

"अपना खाना अपने पास रखो! तुम्हें तो रोना-धोना ही प्यारा लगता है।" यह कहकर रंजीत गाड़ी में बैठ गया। उसने ड्राइवर को चलने का आदेश दिया।

लक्ष्मी दौड़ी-दौड़ी दरवाजे तक आई। लेकिन तब तक उसका पति जा चुका था। उधर, रंजीत की माँ सोफे पर बैठी हुई गहरे चिंतन में डूबने लगी। लक्ष्मी ने जब उन्हें उस दशा में देखा तो उसने पूछा, "क्या हुआ, माँजी! आप सोच में कैसे डूब गईं?"

"बहू! आज मुन्ना बिना खाए ही चला गया है। बचपन में मैं अपने खाने से पहले इसके खाने-पीने की व्यवस्था किया करती थी। लेकिन आजकल मैं देख रही हूँ कि वह बिना कुछ खाए-पिए ही ऑफिस चल देता है।" सास ने गहरी साँस खींची।

"अब आप ही बताइए न माँजी कि इसमें मैं क्या कर सकती हूँ? मैं उनके लिए थाली लाई थी कि वे निकल गए।" लक्ष्मी का विवशता भरा स्वर था।

"देख बेटी! उसके स्वास्थ्य का ध्यान तू नहीं रखेगी तो फिर और कौन रखेगा? अब अच्छा-बुरा भी तो तुझे ही सोचना है। बचपन में उसकी देखरेख मैं किया करती थी। अब यह सब तुझे ही तो करना है।" सास ने कहा।

"जी, मांजी!" कहकर लक्ष्मी उनके लिए खाना ले आई।

चूँकि आज रंजीत खाना खाकर नहीं गया था इसलिए माँ का मन भी खाने को नहीं हुआ। एक-आध रोटी खाकर ही उसने हाथ धो लिये। सारे दिन वह बेटे

का इंतजार करती रही।

संध्या समय जब रंजीत घर आया तो उसने सास-बहू को अपना इंतजार करते हुए देखा। फिर वह फ्रेश होकर रात का खाना खाने लगा। उसके बाद वह सोने के लिए बिस्तर पर चल दिया।

दूसरे दिन सुबह रंजीत की माँ को मंदिर जाना था। इसलिए वह उसकी गाड़ी को मंदिर ले गई। दशहरा का दिन था। इसलिए आते समय देर हो गई। घर में बैठा रंजीत माँ का इंतजार कर रहा था। गाड़ी आने में, घर में ही दस बज गए थे। गाड़ी आते ही वह अपने ऑफिस चल दिया।

दूसरे दिन ड्राइवर ने रंजीत की माँ के पास आकर कहा, "मालकिन, मालिक ने मुझे हटाकर दूसरा ड्राइवर रख लिया है। जबकि मेरी कुछ गलती नहीं थी। आपने ही तो मुझे मंदिर जाने को कहा था। मेरे परिवार में आठ आदमी हैं। जिसमें से दो कुँवारी बेटियाँ हैं। अब इस बुढ़ापे में मैं कहाँ जाऊँगा?"

"ठीक है। मैं रंजीत से बात करती हूँ। वह तुम्हें कुछ नहीं कहेगा। तुम बेफिक्र रहो।" माँ ने उसे समझाकर चुप करा दिया।

"ठीक है, मालकिन। आप कहती हैं तो बेफिक्र रहूँगा। लेकिन...।"

"इस समय तुम अपने घर जाओ। दो दिन बाद फिर से मिल लेना।" माँ ने कहा।

"जी।" कहकर वह अपने घर चला गया।

शाम को जब रंजीत ऑफिस से घर लौटा तो माँ ने उससे ड्राइवर वाली बात कही, "उस ड्राइवर को मैं ही तो मंदिर ले गई थी। बेटे, इसमें उसकी क्या गलती है जो तुमने उसे नौकरी से निकाल दिया?"

"नहीं माँ। मैं उसे नहीं रखूँगा।" रंजीत ने कहा।

"अरे पगले! इसमें उसकी क्या गलती है? फिर उस गरीब की दो जवान बेटियाँ हैं। अगर हम उसे हटा देंगे तो वह उनकी शादी कैसे करेगा?"

"ठीक है। आप रखना चाहती हैं तो उसे किसी दूसरे काम पर रख लें। मैं उसका पैसा आपको दे दिया करूँगा।"

रंजीत फ्रेश होने चल दिया। तभी लक्ष्मी ने आकर माँ से कहा, "उनकी बात मान लें। आज वे कह रहे थे कि वे ऑफिस एक घंटे देर से पहुँचे। उन्हें अपने बॉस के सामने बेइज्जत होना पड़ा था।

थोड़ी देर के बाद रंजीत भी वहाँ आ गया था। उसने कहा, "माँ, लोग मुझे देखकर ही ऑफिस में घड़ी मिलाया करते थे लेकिन आज मैं देर से पहुँचा तो सबके सामने मुझे लज्जित होना पड़ा था।"

"ठीक है। ये हमारी माँ हैं। हमें इनकी बात का भी तो ध्यान रखना चाहिए

न!" लक्ष्मी बोल पड़ी।

रात का खाना खाने के बाद रंजीत सोने के लिए अपने कमरे में चल दिया। लक्ष्मी भी काम से निबटने के बाद सोने चल दी। वह पति के चेहरे को गौर से देखने लगी। तभी रंजीत को गर्म-गर्म साँसों का अहसास हुआ। उसने करवट बदलकर कहा, "लक्ष्मी, मुझे और परेशान न करो। मुझे सोने दो। प्लीज!"

"आप औरों की बात नहीं मानते तो ठीक है। लेकिन माँ जी की बात तो आपको माननी ही चाहिए न! आप उस ड्राइवर को नौकरो से मत निकालिए।"

"लक्ष्मी, तुम मुझे शांति से सोने दोगी या नहीं? कहो तो मैं यहाँ से कहीं और जाकर सोता हूँ।" रंजीत इस समय उस पर झुँझला पड़ा था।

लक्ष्मी कुछ न कहकर चुपचाप सो गई।

दूसरे दिन रंजीत जब बॉथरूम गया तो उसने वहाँ अपने पिताश्री को अपने रेजर से शेव बनाते हुए देखा। यह देखकर उसे क्रोध आ गया। उसी दशा में उसने पूछा, "आप मेरे रेजर से शेव क्यों कर रहे हैं?"

"अरे, तुम्हें क्या हो गया? अगर मैं तेरे रेजर से शेव कर रहा हूँ तो इसमें परेशान होने की ऐसी क्या बात है?" उसके पिताजी बोल पड़े।

"नहीं। अगर आपके पास रेजर नहीं है तो बाजार से मँगवा लीजिए।"

यह सुनकर श्रीकांत बाबू चुप हो आए। उन्होंने जल्दी-जल्दी अपनी दाढ़ी बनाई और नहाकर पूजा-पाठ करने चल दिए।

रंजीत बॉथरूम से आकर लक्ष्मी से पूछने लगा, "लक्ष्मी, मेरी अटैची तैयार हो गई क्या?"

"हाँ जी, तैयार तो कर दी है। लेकिन एक बार आप खुद ही देख लें। कोई सामान न छूट गया हो?"

"ठीक है। अटैची तो लाओ।"

लक्ष्मी ने उसे अटैची थमा दी। उसे देखकर उसने कहा, "अरे! तुम भी कैसे कपड़े रखती हो! देखो तो इनके बटन गायब हैं। सभी का यही हाल है।" रंजीत का मन खराब होने लगा।

"मैंने तो ठीक ही रखे थे।"

"क्या ठीक रखे थे! मुंबई में बोर्ड की मीटिंग है। क्या उसमें हम यही कपड़े पहन कर जाएँगे? लोग मुझे देखेंगे तो क्या कहेंगे? यही कहेंगे न कि इसे तो पहनने-ओढ़ने का भी 'मैनर' नहीं है। यह ऑफिस कैसे चलाता होगा?" रंजीत के माथे पर बल पड़ गए।

"जी।"

"क्या जी-जी कर रही हो! मेरी आलमारी से सारी शर्टें और पतलूनें ले

आओ। मैं खुद ही चुनकर रखता हूँ।" रंजीत ने कहा।

लक्ष्मी आलमारी से सारी शर्टें और पतलूनें निकाल लाई। उनमें से कुछ रंजीत ने अटैची में रख लिये। फिर वह पत्नी से बोला, "सारे कपड़ों के बटन चेक कर लो!"

"आखिर मैं भी क्या कर सकती हूँ! बाबूजी आपके कपड़ों को पहना करते हैं। मैं रोकूँगी तो वे क्या कहेंगे? तब माँजी और बाबूजी मेरे साथ कैसा बर्ताव करेंगे? आपने कभी इस पर भी सोचा है? जब वे मुझे घर से बाहर निकाल देंगे तो मैं क्या करूँगी?"

"मैं कुछ नहीं जानता। आइंदा ऐसा नहीं होना चाहिए।"

"ठीक है। अगर वे मुझे घर से निकाल देंगे तो?" लक्ष्मी ने पूछा।

"नहीं। ऐसा मौका कभी नहीं आएगा। तुम निश्चिंत रहो।"

"ऐसा ही होगा। मैं पराई जो हूँ। मुझे दूध में पड़ी मक्खी की तरह से निकाल दिया जाएगा। औरत तो रोने के लिए ही जन्म लिया करती है। फिर आपके घर में यदि ऐसा हुआ तो कौन-सी नई बात होगी!" लक्ष्मी ने कहा।

"अब अपनी राम-कहानी बंद भी करो। मैं बाहर जा रहा हूँ। तुम जल्दी से खाना लगाओ।" रंजीत पत्नी पर झुँझलाकर बोल पड़ा।

"अभी लाई।" कहकर लक्ष्मी खाना लाने चल दी।

खाना खाकर रंजीत ने माँ-पिताजी को प्रणाम किया और रेलवे स्टेशन के लिए घर से निकल पड़ा।

ट्रेन में बैठकर रंजीत अपने घर के बारे में सोचने लगा। अपने दोस्तों की बातें भी उसके दिमाग में कौंधने लगीं। वे अक्सर कहा करते हैं, "दोस्त! आजकल तुम्हारी शर्ट और पैंट किसी बुजुर्ग को पहने हुए देखते हैं।" कोई कहता है, "मित्र, तुम्हारे बाबूजी जो कपड़े पहनते हैं वे सब युवाओं के ही होते हैं। उन पर वे तनिक भी नहीं भाते।" इसके अलावा श्रीकांत बाबू उसके ड्राइवर से भी रुपया माँगा करते हैं। लेकिन वे रुपये उसे ही ड्राइवर को लौटाने पड़ते हैं। यही कारण था कि पिछले दिनों लक्ष्मी ने ड्राइवर को दो सौ रुपये दिए थे! तब उसने ड्राइवर से कहा भी था, "अब आगे से उन्हें रुपये न देना।" लेकिन उन्हें रुपये लेने की आदत छूटती ही नहीं। पिछली बार भी उन्होंने ड्राइवर से रुपये लिये थे। जिनके कारण उसकी बहुत हुज्जत हुई थी। वे सारे दृश्य रंजीत की आँखों के आगे किसी चलचित्र की तरह से आ-जा रहे थे। ऐसे में उसका माथा दुखने लगा। तब अपना ध्यान बँटाने के लिए उसने एक पत्रिका खरीद ली। जिसमें वह एक कविता को ध्यान से पढ़ने लगा।

तनाव

आज देश तनाव में है,
यहाँ नेता, क्या अभिनेता,
क्या संतरी, क्या मंत्री,
क्या पिता, क्या बेटा,
क्या ममी, क्या बीवी,
सभी तनाव में हैं।

आज समाज में–
न बिजली, न सड़क,
न नाला, न प्रशासन,
जिससे लोग तनाव में हैं।

आज जिंदगी में–
किसी को
पुत्र नहीं, धन नहीं,
जोरू नहीं, जमीन नहीं,
नौकरी नहीं, मंजिल नहीं,
इसी कारण तनाव हैं।

उस कविता को पढ़कर रंजीत के दिमाग को थोड़ा-सा सुकून मिलने लगा। कारण यह था कि आज एक वही नहीं, सारे ही देश का माहौल तनावग्रस्त चल रहा है। फिर थोड़ी देर के बाद ट्रेन के हिचकोलों से उसे नींद आ गई। सुबह उसकी नींद खुली तो पता चला कि ट्रेन दादर स्टेशन पर खड़ी है। यदि उसकी नींद यहाँ न खुलती तो ट्रेन आगे चली जाती। जिससे उसे बहुत असुविधा होती।

दादर रेलवे स्टेशन पर रंजीत को लेने के लिए उसके फर्म की गाड़ी आई हुई थी। उसी में बैठकर वह अपने फर्म के चेयरमैन से मिलने चल दिया। वह उन्हें अपने ऑफिस के बारे में पूरा ब्यौरा बतलाने लगा। उससे मिलकर चेयरमैन साहब बहुत ही प्रसन्न हुए। वे भी तो खुशमिजाज आदमी थे। रंजीत का वहाँ एक हफ्ते का समय कैसे बीत गया, उसे इसका पता ही नहीं चल पाया। अब तक चेयरमैन के साथ बोर्ड की मीटिंग भी पूरी हो गयी थी। वह मीटिंग बड़ी प्रभावशाली थी। कुल मिलाकर वह अच्छी मीटिंग रही। वहीं उसे मैनेजर से 'जेनरल मैनेजर' बना दिया गया था। रंजीत को इससे अपार प्रसन्नता हुई। इस कारण वह वहाँ से ढेर सारी चीजें खरीद कर घर ले आया था।

चेयरमैन के स्वभाव की छाप, रंजीत पर हावी होने लगी थी। आते समय उसे लगा था, जैसे वह उनसे नहीं, अपनी माँ से बिछुड़ रहा हो। सारे रास्ते वह चेयरमैन

के ही बारे में सोचता रहा था। सचमुच आदमी को जहाँ स्नेह, प्यार और ममता मिल जाती है, वह उसे बहुत प्रभावित करती है। यही नहीं, वह सदा उसी के साहचर्य में जीना भी चाहता है। रंजीत का भी यही हाल था।

घर आकर रंजीत उसी पुराने ही वातावरण में जीने लगा। ऐसे में यहाँ उसे अपना दम घुटता-सा प्रतीत होने लगा। क्योंकि वह न तो घर में किसी को बुला सकता था और न ही अपने यहाँ किसी को पार्टी दे सकता था। जबकि उसके फर्म के अन्य लोग, यदाकदा उसे पार्टी दिया करते! आज उसकी शादी हुए भी तीस वर्ष हो चले हैं। फिर भी लक्ष्मी उसके घर की देहरी नहीं लाँघ सकी थी। वह तो एक घरेलू औरत बनकर ही रह गई थी।

एक दिन श्रीकांत बाबू अपने कमरे में बैठे हुए रंजीत के दुर्व्यवहार के बारे में सोचने लगे। उनकी समझ में नहीं आ पा रहा था कि वे पुत्र के प्रति क्या व्यवहार करें! कभी वे सोचते कि अपना सिर फोड़ लूँ। कभी सोचते कि नदी में कूदकर आत्म-हत्या कर लें! इस तरह अनेक प्रकार के आत्मघाती विचार उनके मस्तिष्क में आते-जाते। तभी उनकी आँखों के आगे वे दिन आने-जाने लगे, जब वे रंजीत का पालन-पोषण किया करते थे। दो-तीन वर्ष का रंजीत जब भूख से व्याकुल होकर रोता था तो उनके कलेजे में दरार ही पड़ने लगती थी। उस समय इनका एक ही उद्देश्य था कि उनका बेटा पढ़-लिख जाए तो उनकी गरीबी सदा के लिए दूर हो जाएगी। इसलिए पढ़ा-लिखाकर वे उसे अच्छी नौकरी पर लगा देखना चाहते थे। वे हर प्रकार से उसका भविष्य खुशहाल बनाना चाहते थे!

"श्रीकांत, पहले खुद खा-पी ले, तब अपने बेटे की चिंता करना। भला जब तू ही नहीं रहेगा तो इसकी परवरिश कौन करेगा?" उसके मित्र कहा करते थे, "इस पर भी उन पर कोई असर न होता और वे उसी लगन से बेटे की परवरिश करते रहते थे।

और आज? उनका वही बेटा उन्हें दुख देता आ रहा है। श्रीकांत बाबू सोचने लगे, "हम दो प्राणी अपना सारा सुख भूलकर अपने बेटे की ओर ही ध्यान देते रहे हैं। वही बेटा आज हमारे साथ दुर्व्यवहार करता आ रहा है। आज यदि मैं उसकी कोई चीज लेता हूँ तो वह मुझ पर बिगड़ने लगता है। मैं उसका पिता हूँ। यह घर मेरा है। लेकिन मैंने तो कभी नहीं कहा कि तुम इस घर से निकल जाओ! फिर वह मुझे क्यों अपमानित करता है?" ऐसा सोचते-सोचते उनकी आँखें भर आई।

एक दिन सभी समाचार पत्रों में यह खबर छपी, "देश के पूर्व प्रधानमंत्री से लेकर चीफ मिनिस्टर तक, एम.पी. से लेकर एम.एल.ए. तक सभी ने सारे देश के खजाने को लूटकर, उससे अरबों रुपये निकाल लिये हैं। उन्होंने पूरे देश को ही

लूट लिया है। जिससे इस देश के ईमानदार कहे जाने वाले नेताओं को जेल भेज दिया गया है। किसी को सम्मन जारी किया गया है तो कोई अदालत के कठघरे में खड़ा है। ऐसे में पूरे देश के ऊपर संकट के बादल मँडराने लगे हैं। यही कारण है कि इन दिनों विदेशी आकाशवाणी और टी.वी. से कहा जाता है, "अब चलिए घोटाले के देश में!" जबकि कल तक यह देश विद्वत्ता में, सारे संसार के गुरु के रूप में पूजा जाता था। लेकिन आज भ्रष्टाचार के आरोपों में फँसा हुआ है। इन बातों पर विचार कर श्रीकांत बाबू को शर्म आने लगी। कारण जिस देश के पूर्व शासक अशोक, चंद्रगुप्त, बुद्ध, महावीर जैसे लोग हुए हैं, उसी को आज बदसूरत नेताओं के चेहरे देखने को मिल रहे हैं। ये नेता आज सफेदपोश और ईमानदार बनकर यहाँ की जनता का पैसा लूट रहे हैं। आखिर क्या अधिकार है इन्हें इस देश में जीने का? क्यों नहीं ऐसे लोग सामूहिक आत्महत्याएँ कर लेते? अब तो जनता को चाहिए कि ऐसे लोगों को कुर्सी से खींचकर मारे। तभी उन्हें सही सजा मिल सकती है!

इधर, श्रीकांत बाबू ने जब इन नेताओं की ये गंदी हरकतें देखीं तो उनका हृदय परिवर्तित होने लगा। उस बदलाव में वे सोचने लगे, 'आखिर आदमी जो रुपया-पैसा कमाता है, वह सब इसी पृथ्वी पर रह जाता है। फिर क्यों वह रुपये के लिए मारा-मारा फिरा करता है? इसे प्राप्त करने के लिए झूठ का सहारा लेता है। इसी प्रकार बेटे की चीजों पर भी मेरा कोई अधिकार नहीं है। जीवन भर मैं उसे देता रहा हूँ और अब उससे ले रहा हूँ। फिर हमारा जीवन भी कितना है! इन दिनों उनका बेटा अच्छा कमा रहा है। ऐसे में वह अपने पैसों को क्यों न जमा कर रखे। आखिर पैसा रहेगा तो बुरे वक्त में उसे ही तो काम आएगा न?'

इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर श्रीकांत बाबू ने अपने लिए सारे कपड़े और रोज प्रयोग में आने वाली सारी चीजें मँगवा लीं। इस समय उन्होंने प्रण कर लिया कि भविष्य में वे बेटे की चीजों का प्रयोग नहीं करेंगे। ऐसे में वे ठाट का जीवन बिताएँगे।

आज श्रीकांत बाबू अपनी पुरानी आदतों को छोड़कर नया जीवन जीने के लिए तत्पर हो गए हैं। जिससे उनके घर का सारा वातावरण ही बदल गया है।

पिताश्री में आए हुए इस बदलाव को देखकर रंजीत का जीवन भी सँवरने लगा। अब वह अपने घर में अपने मित्रों को पार्टियाँ देने लगा है। ऐसे में उसका सामाजिक दायरा भी बढ़ने लगा। यही नहीं, सारे परिजन सुखपूर्वक रहने लगे हैं। सभी तनावमुक्त हो चले हैं। अब वह ऑफिस का काम समाप्त कर सीधे घर आ जाया करता है। अब उसे यह घर स्वर्ग से भी सुंदर लगने लगा है। क्योंकि घर का सारा माहौल खुशगवार हो आया है!

बंदर-बाँट

राज पाठकजी के चार बेटे थे। स्वयं वे बहुत ही व्यावहारिक और उत्तम आचार-विचार के थे। इसलिए समाज के लोग उन्हें अपने परिवार के सदस्य की तरह इज्जत व प्रतिष्ठा दिया करते थे। उनके ये संस्कार उनके चारों पुत्रों में भी भरे पड़े थे। जिसके कारण वे भी सुसंस्कृत, आचार-विचारों के मालिक बने। धीरे-धीरे राजजी ने अपने सभी पुत्रों का विवाह कर दिया। वे स्वयं ही धनी व्यक्ति थे। इसलिए उन्हें दहेज का कोई भी लोभ-लालच नहीं था। फिर सभी बेटे अपनी-अपनी घर-गृहस्थी सँभालने लगे। अपने उस भरे-पूरे परिवार को देखकर, पाठकजी अपने को आनंदित व गर्वित महसूस किया करते। आसपास के लोग उस सुसंस्कृत परिवार को मिसाल के रूप में पेश करते।

चौरासी वर्ष की उम्र तक राजजी ने लगातार एड़ी-चोटी का पसीना बहाकर, जड़ी-बूटियों का एक औषधालय खोल लिया था। वहाँ आसपास के ही नहीं, दूसरे प्रदेशों के रोगी भी अपना इलाज करवाने आया करते। एक दिन राजजी किसी असाध्य रोग के कारण खटिया पकड़ बैठे। तब चारों भाइयों को, पत्नियों के आँचलों की हवा लगने लगी। जिससे उनमें फूट पड़ने लगी। किसी-न-किसी बात को लेकर उनमें लड़ाई होने लगती। यह सब देखकर राजजी भीतर-ही-भीतर दुखी होते रहते। उन्होंने उन्हें समझाया लेकिन उन पर उनका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। एक दिन इसी सदमे में राजजी भगवान को प्यारे हो गए। घर में रोना-धोना मचने लगा। फिर सभी भाई, पिताश्री के क्रियाकर्म से निवृत्त हुए।

जिस औषधालय में राजजी पिछले पचास वर्षों से अपनी 'साख' बनाए हुए थे, उसी के लिए वे चारों आपस में लड़ने लगे। उस आपसी झगड़े के कारण वह दुकान बंद ही हो गई। इस कारण भाइयों ने पिताश्री की सारी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिला दी। उनकी जमाई हुई साख की ओर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। उन्हें यह भी अहसास नहीं हुआ कि दुकान को बंद कर वे कितनी बड़ी भूल कर रहे हैं! यह सब उनकी पत्नियों के कारण ही हुआ था।

साल-छह महीने तक वे चारों भाई यों ही मक्खियाँ मारते रहे। उसके बाद उनके दिमाग में दुकान खोलने के विचार आए। इसलिए मेन रोड के औषधालय

को छोड़कर वे अपने-अपने बँटवारे वाले घरों में दुकानें खोलने लगे। उनके पिताश्री माने हुए वैद्य थे। इसलिए वे भी वैद्यकी का काम करने लगे।

उनकी माँ अपने बेटों के इस खेल को देखकर मन-ही-मन दुखी हो रही थी। उसे इस बात का दुख था कि पिता की मृत्यु के बाद वे तुरन्त अपनी पैतृक संपत्ति का बँटवारा कर लिये थे। वह सोचा करती, 'क्या इसी दिन के लिए माँ-बाप अपनी औलाद जनती है? क्या उसके भाग्य में यही दुर्दशा देखना बदा था? जब इनके पिताजी जीवित थे तो ये लोग रोज हमारे पैर छूकर हमारा आशीर्वाद प्राप्त किया करते थे। लेकिन पिता के मरने के बाद, आज उसका भी महत्त्व घट गया है। पहले ये मेरी बातों को नहीं काटा करते थे। पहले परिवार में प्यार भरा वातावरण रहा करता था। लेकिन अब तो इन्हीं कारणों से लगता है, अब माँ की आँखें ही पथरा जाएँगी।'

चारों भाइयों की दुकानों में तरह-तरह की घटनायें घटित होने लगीं। किसी दुकान पर जब कोई रोगी आता तो दूसरा भाई उसे आवाज देकर अपने पास बुलवा लेता। जबकि पिछली बार उसे किसी और भाई ने देखा था। फिर भी, वह रोगी सामने वाले भाई पर नजर पड़ने के कारण चला जाता था। सारे रोगी इन भाइयों से परिचित थे। इसलिए वे उनके पास चल देते। कोई भाई उसे रोकते हुए कह देता, "गुप्ताजी, पिछली बार आप हमारे यहाँ आए थे। अब वहाँ दिखला रहे हैं!" ऐसे में वह रोगी मुस्कराकर ही रह जाता। इसी प्रकार चारों भाइयों का वह कारोबार चलता रहा। वे सभी भाई इलाज करने में माहिर थे। इसलिए सभी रोगमुक्त हो जाया करते थे।

आज पाठकजी के परिवार की तरह के कई दृश्य आपको 'वकालत' में भी दिखाई पड़ते हैं। वहाँ कोई केस लड़ने वाला 'क्लाइंट' सबसे पहले जब किसी वकील से मिलता है तो वह वकील कहता है, "वही सबसे श्रेष्ठ वकील है। इसलिए दूसरे वकील के पास जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।" तब वह वकील अपने उस 'क्लाइंट' को खूब 'डेट-पर-डेट' दिलवाता है। इस समय वह वकील नहीं चाहता कि आती हुई आमदनी में कोई अड़चन आए। जिसके कारण छोटे-से-छोटे केस को भी वह वकील आराम से चार-पांच साल तक घसीट लेता है। अंत में जब उस केस का जल्दी कोई निर्णय नहीं होता तब वह 'क्लाइंट' दूसरे वकील को पकड़ता है। दूसरा वकील भी उसे 'सब्जबाग' दिखलाने लगता है। उस समय उसे पूरा विश्वास रहता है कि वह उसका केस जिता देगा। कहने का मतलब यही है कि यहाँ भी पाठकजी के परिवार की ही तरह वातावरण होता है। कोई 'क्लाइंट' कचहरी में प्रवेश नहीं कर पाता कि वकील उसे अपनी ओर खींच लेता है।

कान्वेंट स्कूलों के भी इन दिनों यही हाल हैं। आज प्रत्येक स्कूल आश्वासन देता है कि उनके यहाँ सारी सुविधाओं के साथ पढ़ाई की अच्छी व्यवस्था है। बेचारे गार्जियन उसकी बातों में आ जाते हैं। वे अपने बच्चों को इन स्कूलों में प्रवेश दिलवा देते हैं। उसके बाद पाँच-छह महीने बाद ही उन्हें असलियत का पता चलता है। उस समय पता चलता है कि विद्यार्थी कोई खास प्रोग्रेस नहीं कर पा रहा है। गार्जियन की नींद तब खुलती है जब पानी सिर के ऊपर से गुजरने को होता है। तब पछतावे के अलावा उसके हाथ कुछ भी नहीं लगता है। इस समय दूसरे स्कूलों में वह इसलिए नहीं जा पाता कि वहाँ उससे 'एक्सट्रा' फीस ली जाती है। जो लोग अपना पेट काट-काटकर अपने बच्चों को पढ़ा रहे हैं वे 'एक्सट्रा' पैसा कहाँ से लाएँगे?

ऐसा ही अनुभव लेखक को 'हॉर्डिग पार्क' में भी हुआ था। उस दिन वह पटना से राँची जा रहा था। वहाँ ट्रेवल एजेंसी की कई बसें खड़ी थीं। ये लोग उस समय यात्री को पकड़ने के लिए, सहसा उस पर टूट पड़ते हैं। तब यात्री दुविधा में पड़ जाता है। वह इस समय समझने लगता है कि न जाने कौन-सा भूचाल आ गया है! तब तक ये एजेंट उसके सूटकेस, अटैची को उठाकर अपने बस में ले जाते हैं। इस समय वह एजेंट सोचता है कि सारे यात्री बहादुर और मजबूत कद-काठी के होते हैं। इस कारण कई यात्रियों को चोटें भी लग जाती हैं। पर उन्हें कोई परवाह नहीं होती। किसी तरह से वे उन्हें अपनी बस में ठूँस ही लेते हैं। इस जोर-जबरदस्ती के कारण यात्री उनका विरोध भी तो नहीं कर पाता! वहीं आसपास पुलिस भी रहती है। लेकिन वह मूक दर्शक बनी रहती है। उस रेलमपेल में यात्री की जेब भी कट जाती है। कभी-कभी तो उसका सामान ही गायब कर दिया जाता है। वहाँ पर हाथ की सफाई करने वाले गैंग हमेशा सक्रिय रहते हैं। ये एजेंसी वाले उस छीनाझपटी में लाख-डेढ़-लाख रुपया कमा लेते हैं। प्रशासन और पुलिस यहाँ अंधी और बहरी बनी हुइं होती है। देखकर भी वे अनदेखी कर देते हैं। इन घटनाओं को देखकर लेखक अनुभव करता है कि ऐसी जगहों पर वह दृश्य उपस्थित हो आता है जैसे कि किसी ने कुत्तों के बीच कोई हड्डी फेंक दी हो। ये लोग उसी के लिए आपस में लड़ने लगते हैं। आज देश में चारों ओर यही स्थिति है।

कहने का तात्पर्य यह है कि पाठकजी के घर में ही नहीं, बल्कि हर ओर यही छीना-झपटी चल रही है। लोग अपने फायदे के लिए एक-दूसरे को लूट-खसोट रहे हैं। एक-दूसरे को नोंच कर वे अपनी चाँदी बना रहे हैं। जबकि आज के मानव का जन्म, इस सब के लिए नहीं हुआ है। उसका जन्म तो आपसी भाईचारे और सहयोग के लिए ही हुआ है। आज हर व्यक्ति को चाहिए कि वह मंदिर-मस्जिद, गुरुद्वारे और चर्च के आगे माथा झुकाए। उसमें पूरी आस्था रखे। ऐसे में वह स्वयं

अपना, अपने समाज और देश का कल्याण कर सकता है। यदि ऐसा हो जाए तो हमारा यह देश संसार का 'सुपर पावर' देशों में गिना जाने लगेगा। वह फिर से विश्वभर में पूजा जाने लगेगा। क्योंकि सभी में एक ही परमात्मा की लौ जल रही है। सभी के शरीर में वही लाल रंग का खून बह रहा है। तब हम मजहब की बातें क्यों करें? इसलिए आज के मानव का पूर्ण कर्तव्य हो जाता है कि वह एक-दूसरे की भलाई के लिए ही जिए। आपस में कोई भी भेद-भाव न रखे। एक-दूसरे के साथ मिल कर रहे।

हाय! मेरा मुर्गा

रोहित मौज-मस्ती करने का और मुर्गा खाने का बहुत शौकीन था। इसलिए जब भी वह किसी पार्टी में पहुँचता तो वहाँ मुर्गा छक कर खाता। मुर्गा खाने का यह शौक उसे पिछले बीस-पच्चीस वर्ष से ही चर्राया है। वह भी जब उसका विवाह हुआ था। तब उन दिनों उसका साला उसे होटल ले जाता। वहाँ वह उसकी सब्जी में कभी अंडे डलवा देता, तो कभी मांस की तरी और कभी मुर्गा खिला देता! शुरू-शुरू में 'न! न!' करने पर भी उसके साले ने उसे खूब होटलबाजी करवाई थी। फिर तो वह स्वाद उसकी जीभ पर हमेशा के लिए ही रचने-बसने लगा था। बाद में तो मांस खाना उसका एक जरूरी शौक हो गया था। जबकि उसके परिवार में मम्मी-डैडी और परिजन एवं इसके ससुराल में सिर्फ साले को छोड़कर कोई भी तो मांस का सेवन नहीं करता! लेकिन रोहित को साले के कारण मांस और मुर्गा खाने की आदत पड़ चुकी है। अब तो मुर्गे का सेवन उसकी रुचि में ही बदल गया है!

विवाह के कुछ वर्ष बाद रोहित अपनी रोजी-रोटी के लिए अपने ससुर के व्यापार से जुड़ गया था। उस व्यापार में रोहित को अक्सर ही शहर से बाहर जाना होता था। इसलिए उसे अपने साले से कम ही भेंट होती। अगर वह घर होता तो मांस-मछली या मुर्गे का प्रोग्राम अवश्य बनता। यह भी संयोग ही था कि जब भी इस प्रकार के प्रोग्राम बनते उस दिन शुक्रवार पड़ता। इसलिए उसके ग्रुप में 'शुक्रवार' खूब पापुलर हो गया था। जब इन लोगों का भोज न होता तो वे एक-दूसरे से मिलने पर कहा करते, "क्या बात है? शुक्रवार आया भी और चला भी गया। लेकिन...!"

"हाँ, आया तो था। लेकिन हम यहाँ थे ही नहीं।"

"ठीक है। फिर से शुक्रवार आ रहा है। क्या कुछ होगा कि नहीं?"

"इस बार कोशिश तो रहेगी। अब देखो ऊपर वाला चाहेगा तो जरूर 'शुक्रवार' होगा।"

चूँकि रोहित व्यापार के सिलसिले में अपने ससुर से जुड़ गया था इसलिए उसके ससुराल में रहने पर, उसके ससुर को कभी-कभी शादी-ब्याह के मौके पर,

कहीं बाहर आना-जाना पड़ता था। साथ में वे उसे भी ले जाते। वहाँ यदि शाकाहारी भोजन होता तो वह उदास हो आता। जिस भोज में वह मांसाहारी भोजन देखता तो उसकी बाँछें ही खिल आतीं। उस समय दूर से आती उसकी गंध से उसकी लार टपकने लगती और उसका रोआँ-रोआँ खिल उठता। उसका मन-मयूर नाच उठता। उस भोजन से वह तृप्त हो जाता। इसलिए वह जिस भी भोज में जाता, सबसे पहले वह वहाँ मुर्गे की ही खोज किया करता। क्योंकि वह उसका प्रिय भोजन होता, इसलिए उसे वह बड़े चाव से खाता!

एक दिन रोहित के ससुर ने उससे कहा, "मेहमान! एक शादी में मेहमानी के लिए हमें गुड़गाँव चलना है।"

"ठीक है, हम चलेंगे।" उसने कहा था।

फिर वे दोनों ठीक समय पर, कार से गुड़गाँव जा पहुँचे थे।

आमंत्रित लोगों के साथ रोहित बातचीत करने लगा था। तभी उसने देखा कि बारातियों के लिए मुर्गा और पुलाव जा रहा है। उसे देखकर उसके ससुर पवन बाबू बोले थे, "मेहमान, यह क्या है?"

"आलू जैसी कोई चीज लगती है।" उस समय रोहित साफ झूठ बोल गया था। वह जानता था कि उसके ससुर मांस-मछली और मुर्गे का सेवन नहीं करते। इस पर पवन बाबू ने पुनः कहा, "नहीं मेहमान, वो आलू नहीं था। लगता है, यहाँ मासांहारी भोजन का प्रोग्राम है। राजपूतों की शादी-ब्याह में मांसाहारी भोजन चलता है।"

रोहित चुप था। वह सोचने लगा था कि कब बाराती आएँ और हम मुर्गे पर हाथ साफ करें! मन-ही-मन वह मुर्गे का स्वाद लेने लगा था। उस समय उसके मुँह से लार टपकने लगी थी।

रोहित वहाँ बैठा हुआ बारात की सजावट को देखता जा रहा था। तभी बारात आने की खबर आई। इससे उसे बड़ी खुशी हुई। क्योंकि दस-पंद्रह मिनट बाद उसे मुर्गे का स्वाद मिलने वाला था। वह इसी उधेड़बुन में बैठा हुआ था। तभी पवन बाबू को पता चला कि बारातियों के बीच गोली चल गई है। इसलिए वे आपस में एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए हैं। ऐसी स्थिति देखकर पवन बाबू ने उससे कहा, "मेहमान, जल्दी से गाड़ी में बैठिए और घर चलिए। बारातियों के बीच तनाव है। आपस में गोली चल गई है। न जाने किधर से गोली चल जाएगी, कोई भरोसा नहीं।"

"लेकिन द्वार पर बारात को तो आने दीजिए।" रोहित बोला।

"छोड़िए बारात को। कहीं एकाध गोली हमें लग जाए तो?"

"बारात द्वार पर भी नहीं आई है और हम लोग यहाँ से चले जाएँगे। ऐसे में

लोग हमें देखकर क्या कहेंगे?''

''छोड़िए भी। मुझे तो लड़की के पिता से मिलना था, सो मिल लिया। अब बारात लगे या न लगे!'' यह कहकर पवन बाबू रोहित के साथ अपनी गाड़ी में बैठ गए। फिर तुरन्त उन्होंने अपने ड्राइवर से चलने को कहा।

वहाँ से गाड़ी चल पड़ी। ऐसे में रोहित का मन उदास हो चला था। उसे लग रहा था जैसे उसके सामने शराब से लबालब भरा प्याला होठों तक आते-आते रह गया हो! उसके भाग्य की यह कैसी विडंबना थी? उस समय उसका दिमाग गाड़ी से भी तेज चल रहा था। मुर्गे को लेकर उसके मन में अनेक विचार आ-जा रहे थे।

उधर, पवन बाबू सोच रहे थे कि उनकी गाड़ी जल्दी-से-जल्दी घर पहुँचे। उन्होंने इसी कारण 'लाइन होटल' में खाना भी नहीं खाया। उन्हें जैसे लग रहा था कि वहाँ भी बाराती लोग बंदूकों, रिवाल्वरों से लैस होकर उन्हें मारने आ रहे हैं!

बहुत देर के बाद रात को पवन बाबू और रोहित घर पहुँचे। उस समय तक रोहित को जोर की भूख लग गई थी। आज तो उसका प्रिय भोजन मुर्गा हाथ लगने वाला था। लेकिन भाग्य ने साथ नहीं दिया। अब भी उसके मुँह से लार टपक रही थी। रात के डेढ़ बजे उसे खाने के लिए रोटी और तोरई की सब्जी मिली थी। चूँकि उसका सारा ध्यान मुर्गे पर ही केंद्रित था इसलिए वह सब्जी भी उसे मुर्गे के ही समान देखने में लग रही थी। फिर भी, उसने आधा-अधूरा ही खाना खाया। उसके बाद वह सोने के लिए चल दिया था।

रात में रोहित नींद में सपना देखने लगा था। वह एक भोज में ससुर के साथ गया हुआ है। वहाँ खाने की टेबल पर मुर्गा है। देखकर वह बहुत प्रसन्न होता है। फिर क्या था! वह जी भरकर मुर्गा खाता है। ऐसे में उसे बहुत तृप्ति मिलती है। ऐसे में उसके सिर का तकिया उसके हाथों में चला आया था। उसे मुर्गा समझ कर वह उसे दाँतों से नोचने लगा था। ऐसे में तकिये की सारी रूई इधर-उधर होने लगी थी।

सुबह छह बजे जब रोहित की नींद खुली तो दूर कहीं कोई मुर्गा बाँग दिए जा रहा था—कुकुडू-कू। वह असमंजस में पड़ गया। कारण यह था कि उसने सपने में मुर्गा खाया था। उसके बाद जागने पर उसने मुर्गे की बाँग सुनी थी। तब वह हाथ का तकिया एक ओर फेंका और बिस्तर से उठकर दैनिक क्रियाकर्म में लग गया।

उस दिन के भोज की असफलता के बाद उसके ससुर पवन बाबू अब कहा करते, ''मेहमान, एक शादी में चलना है।'' तब वह किसी काम का बहाना बना देता। बाहर किसी भोज में जाने से वह साफ मनाही कर देता। तब पवन बाबू

अपने किसी दूसरे परिचित को साथ ले जाते। एक दिन पवन बाबू के साथ गए एक आदमी ने कहा, "आज तो मजे ही आ गए! क्या मुर्गा था! क्या पुलाव था! आज के भोज का स्वाद ही अलग था।"

यह सुनकर रोहित के मुँह में पानी भर आया। तब वह फिर से अपने ससुर के साथ शादी-ब्याह में जाने लगा। हालाँकि मुर्गा खाने से उसका छरहरा शरीर थुलथुल हो गया था। ऐसे में भी उसने मुर्गे का साथ नहीं छोड़ा। जैसे उसने अपने भोजन में मुर्गा खाने की कसम ही खा ली थी। इसलिए भविष्य में भी वह मुर्गे से इसी प्रकार प्रेम करता रहा।

बोतल-संस्कृति

भारत जितना पुराना देश है, शायद ही इसके जोड़ का कोई दूसरा देश संसार में रहा होगा! क्योंकि यहाँ की एक अलग ही गौरवमयी सभ्यता और संस्कृति रही है। अपना एक अलग ही पहनावा रहा है। इसके अलग ही विचार और स्वभाव रहे हैं। ऐसा अन्य देशों में देखने को नहीं मिलता। यह बुद्ध, महावीर, अशोक और चाणक्य का देश रहा है। जहाँ जब शत्रु भी द्वार पर आता है तो उसे अतिथि समझकर सम्मानित किया जाता है। यही कारण है कि इस प्रकार की संस्कृति देखकर समूचा विश्व प्रभावित होता रहा है। फिर भी, इस देश के लोग विदेशी सभ्यता और संस्कृति से ग्रसित होकर विदेशों की 'बोतल-संस्कृति' को धड़ल्ले से अपनाते जा रहे हैं। विदेशों में हर समय जाड़ों का मौसम रहा करता है। इसलिए वे लोग रम, जीन, ब्रांडी आदि नशीले पदार्थों का प्रयोग किया करते हैं। वह पेय उनके जीने का सहारा बन जाता है। लेकिन इस देश में तो ऐसा नहीं है। फिर यहाँ के लोग क्यों धड़ल्ले से पी-पीकर बहका करते हैं? बहक कर टी.वी. पर आ रहे गंदे सीरियल और ब्ल्यू फिल्मों को देखा करते हैं? जबकि हिन्दी साहित्य के आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने एक स्थान पर लिखा है, "हर आदमी को दूसरी भाषा सीखनी चाहिए बल्कि दुनिया की सारी भाषा सीखनी चाहिए लेकिन प्रमुखता अपनी ही भाषा को देनी चाहिए। तभी उसे सम्मान मिलेगा वरना नहीं।" लेकिन आज इस देश के लोग अपनी सारी मान-मर्यादा, बात-सिद्धांत को भूलकर, पाश्चात्य नंगी संस्कृति व सभ्यता को अपनाने में ही लगे हुए हैं!

आज हमारे यहाँ के लोग बचपन से ही विदेशों से प्रभावित होकर उसकी 'बोतल' से दोस्ती कर बैठते हैं। फिर इसका एक कारण भी है। आज यहाँ जब बच्चा जन्म लेता है तो उसकी माँ उसे अपना दूध न पिलाकर उसे 'बोतल' से ही दूध पिलाया करती है। कारण विदेशी औरतों की ही तरह वह अपने को हमेशा आकर्षक और सुंदर फिगर की बनाए रखना चाहती है। जबकि इतिहास साक्षी है कि भारतीय माँ के लिए बच्चा कितना महत्त्वपूर्ण होता है! रानी लक्ष्मीबाई, कौशल्या, सीता, शकुंतला, अनसूया आदि जैसी लाखों माँओं के नाम उदाहरण के रूप में लिये जा सकते हैं। उन्होंने अपने बच्चे को अपना दूध पिलाकर बच्चे का

नाम विश्व में अमर किया है। क्योंकि माँएँ यदि बच्चों को अपना दूध पिलाती हैं तो उन पर अपनी ममता और स्नेह भी तो लुटाती हैं! ऐसे में उसका वह ममत्व चिरस्थायी रहता है। फिर आज के डॉक्टर भी तो हमेशा ही बच्चे को, माँ का दूध पिलाने की बात कहा करते हैं। क्योंकि माँ के दूध में वह पौष्टिक तत्त्व होता है जो अन्य किसी भी दूध में नहीं मिलता।

एक औरत की पूर्णता उसके बच्चे और उसकी परवरिश में ही मानी जाती है। इसलिए तो एक जगह नेपोलियन बोनापार्ट ने लिखा है, "बच्चों का भाग्य सदैव उसकी माँ की कृति है।" लेकिन आज ऐसा नहीं हो रहा है। आज तो औरत अपना दूध न पिलाकर बच्चे को बोतल का दूध पिलाती है। इसलिए देखा जाता है कि वह बच्चा दुबला-पतला होता है। वह रोगग्रस्त होता है। फिर पूरी ममता, प्यार न मिलने के कारण वह बच्चा धीरे-धीरे अपनी माँ से दूर होता जाता है। तभी तो आज का युवा शादी से पहले और शादी के बाद पत्नी को लेकर सर्विस करने के लिए माँ से दूर चल दिया करता है। ऐसे में उस समय माँ को गहरा धक्का लगने लगता है। तब वह समझने लगती है कि बच्चे की परवरिश में कहीं-न-कहीं उससे कोई कमी रह गई है।

बाद में उस माँ का लड़का, अपनी माँ से और भी दूर चला जाता है। चूँकि वह घर से उस समय बाहर रहता है इसलिए पूरी तरह से उसे आजादी रहती है। इसके अलावा स्कूल कॉलेज के समय गार्जियन समझते हैं कि उनके साहबजादे पढ़ने के लिए जा रहे हैं। इसलिए वे कुछ नहीं कहते और न उस पर कोई रोक-टोक लगता है। लेकिन वे साहबजादे तो इस समय साइकिल को स्टैंड पर खड़ी करके सिनेमा हॉल में फिल्म देखने चल देते हैं। फिर तो उसे बुरी संगति के कारण पीने-पिलाने का चस्का भी लगने लगता है। बाद में वह ड्रग्स आदि लेकर अपनी जिंदगी को और रंगीन बनाने लगता है। वह गार्जियन की दौलत गलत कामों में लुटाता है। गार्जियन को इसका पता भी नहीं चलता।

कुछ समय के बाद उसके गार्जियन अपने बेटे का विवाह एक अच्छी-सी लड़की से कर देता है। वह दूर-दराज के स्थान में, पत्नी सहित नौकरी करने चल देता है। वहाँ उसे देखने वाला कोई नहीं होता। इसलिए वहाँ वह पीने-पिलाने का शौक पाल लेता है। इसकी सारी गाज उसकी पत्नी के सिर पर गिरती है। वह 'बोतल' उसके लिए सिरदर्द बन जाती है। क्योंकि वह उसकी सौतन जो बन गई होती है? वह उसे दूर भगाने का प्रयास करती है। इस बीच पारिवारिक डॉक्टर उसे 'पीने' से मनाही कर देता है। फिर भी, उसकी पीने की लत नहीं छूट पांती। तब वह आलमारी के अंदर रखी हुई सारी बोतलें तोड़ डालती है।

यह देखकर पति पत्नी पर नाराज होता है। वह अपने ड्राइवर से कहता है,

"तुम गाड़ी में शराब रखा करो और हर आधे घंटे के बाद मुझे एक पैग पकड़ा दिया करो।"

फिर तो उसका पति जहाँ भी जाता है, जब भी चाहता है, ड्राइवर से शराब का पैग ले लेता है। कभी-कभी ड्राइवर भी मालिक की नजरें बचाकर एक आध-घूँट भर लिया करता है। पत्नी को जब यह बात मालूम होती है तो वह ड्राइवर को समझाने लगती है, "डॉक्टर ने इन्हें शराब पीने से मनाही की है। और तुम इन्हें बढ़ावा दे रहे हो!" लेकिन ड्राइवर पर इसका कोई असर नहीं पड़ता। तब वह उसे नौकरी से निकाल देती है। लेकिन पति उसे बुलाकर उसकी तनख्वाह दुगुनी कर देता है। बेचारी पत्नी हाथ मलती ही रह जाती है। वह पति का जीवन बचाने के लिए कुछ भी तो नहीं कर पाती!

माँ के उस लड़के ने डॉक्टरी हिदायतों के बावजूद बोतल नहीं छोड़ी और तब उसे अस्पताल में एडमिट होना पड़ा। वहाँ भी वह अपने जीवन से खिलवाड़ करता रहा। वह वहाँ भी उसी ड्राइवर के द्वारा शराब का सेवन करता रहता है। फलस्वरूप उसका मर्ज बढ़ता ही जाता है। आज वह उस अस्पताल में, बिस्तर पर अपनी पत्नी का दुर्भाग्य बनकर सड़ रहा है।

ऐसे में भी वह बेड पर पड़ा-पड़ा आशावान रहता है। वह सोचता है, "वह जल्दी ही ठीक हो जाएगा। फिर वह अपने किराये वाले मकान को छोड़कर खुद के बनाये हुए मकान में रहने लगेगा। वह गृह-प्रवेश पर बहुत बड़ा समारोह करेगा।" लेकिन हाय री किस्मत! उसका वह सपना पूरा नहीं हो पाता। वह वहीं दम तोड़ देता है।

इस प्रकार की घटनाओं को देखते हुए भी 'बोतल' प्रेमी उस बोतल से नाता तोड़ने का नाम नहीं लेते। बल्कि उसे छोड़ने के बजाय स्वयं ही इस धरा-धाम को छोड़ जाया करते हैं। ऐसे ही लोग तो कहा करते हैं, "पंडितजी, मेरे मरने के बाद 'गंगा जल' के बदले शराब की दो-तीन घूँट पिला देना।" शराब पीने वालों की यही दशा होती है।

अब सुनिए शराब न पीने वालों के किस्से। आज इस देश में गंगा का पानी बोतलों में भरकर खूब बेचा जा रहा है। आप जिधर भी जाएँ, आपको वहाँ बोतल का पानी ही मिलेगा। चाहे आप सफर कर रहे हों या किसी जलसे में जा रहे हों, अथवा कोई दूसरा अवसर हो, सभी अपने हाथों में पानी की बोतलें लिये हुए होते हैं। पाश्चात्य संस्कृति से वशीभूत होकर ये लोग बोतल का उपयोग करके भारतीय संस्कृति को जैसे चिढ़ा रहे होते हैं। वैसे भी विदेशों में 'डिस्टिल्ड वाटर' जो पीने योग्य होता है, उसी को वहाँ के लोग 'जनरल वाटर' कहकर उसका पीने में उपयोग किया करते हैं। उसी की देखा-देखी आज यहाँ के लोग भी 'रिफाइन वाटर' कहकर

इसे पीने के लिए उपयोग में लाते हैं। यही कारण है कि 'पीने-पिलाने' की संस्कृति आज जोरों पर है। तो क्या आप इस समय इस बोतल-संस्कृति से जुड़े हुए नहीं हैं? आप जहाँ कहीं होते हैं, आप इसी बोतल के पानी का उपयोग करते रहते हैं। पिकनिक हो या कोई पार्टी, उसमें इसी का प्रयोग किया जा रहा है। शुद्ध पानी न होते हुए भी आप उसे शुद्ध पानी माना करते हैं। जब आपको बोतल नहीं मिलती तो आप बेचैनी महसूस करने लगते हैं। इसका अंदाजा आपको छोड़कर दूसरा कोई नहीं लगा सकता। लगता है, इस 'बोतल' से पहले आपने कभी शुद्ध और ताजा पानी पिया ही नहीं?

निष्कर्षतः लेखक को यही देखने को मिलता है कि आज का आम आदमी इस बोतल से बहुत आकर्षित और प्रभावित है। यही नहीं, बोतल उसके जीवन का प्रमुख अंग ही बन गयी है। यदि यही हाल रहा तो यहाँ के लोगों की क्या दशा होगी? ऐसा तो नहीं कि भविष्य में लोग अपना भोजन छोड़कर इसी बोतल को 'अन्नपूर्णा' कहने लगें! क्योंकि आदमी आज जवानी से लेकर बुढ़ापे तक इस बोतल को आत्मसात कर चुका है। फिर भी देखने में आया है कि एक शराबी को जब तक 'बोतल' (शराब) नहीं मिलती, चाहे वह उस समय भूखा ही क्यों न हो, तब तक उसे शांति से नींद नहीं आ पाती। उसी प्रकार आज जो शराबी नहीं हैं, वे भी इस 'बोतल' (पानी) को लेकर परेशान रहा करते हैं। जब तक उन्हें यह 'बोतल' नहीं मिल जाती, तब तक उन्हें संतुष्टि नहीं मिलती। इसे देखकर आप यही कहेंगे, "क्या इस देश के लोग पाश्चात्य संस्कृति अर्थात् 'बोतल-संस्कृति' से जुड़ नहीं गए हैं? अगर यही हाल रहा तो इस देश की सारी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता का क्या होगा?" ऐसे में भी यहाँ के लोग अपनी शानदार संस्कृति और सभ्यता को भुलाकर पश्चिमी संस्कृति और सभ्यता से ग्रसित होते जा रहे हैं!

रईसी से तौबा!

रामातार बाबू रईस मिजाज के आदमी थे। उनकी रईसी की ये बातें दूर-दराज के इलाकों तक फैली हुई थीं। वे जब भी कोई काम करते, उसमें रईसी की बातें अवश्य होतीं। जिससे उनकी उस रईसी को देखकर लोग दाँतों तले अँगुली दबाने लगते। देखा जाए तो वास्तव में वे मन से नहीं बल्कि अपने वचनों और कर्म से ही रईस थे। चूँकि वे व्यवहारकुशल आदमी थे इसलिए उनसे मिलकर कोई भी आदमी दुखी नहीं होता था।

एक बार रामातार बाबू के पास एक कवि आए। वे उन्हें अपनी कविताएँ सुनाने लगे। इससे वे बहुत खुश हुए। उन्होंने खुश होकर कवि महोदय से कहा, "आप कल आकर दो बैलगाड़ी चावल ले जाइएगा।"

"ठीक है।" कहकर वे श्रीमानजी खुश होकर अपने घर लौट गए।

घर आकर कविजी ने अपनी पत्नी से अपनी कविताओं की चर्चा की। दूसरे दिन वे पुनः रामातार बाबू के पास आए और उनसे दो बैलगाड़ी चावल माँगने लगे।

"कैसे चावल?" रामातार बाबू ने पूछा।

"कल वाले।"

"कैसे कल वाले! मैं कुछ समझा नहीं।" रामातार बाबू अनजान बनकर बोले।

"कल मैंने आपको अपनी कविताएँ सुनाई थीं। आपने खुश होकर मुझे दो बैलगाड़ी चावल ले जाने को कहा था। इसीलिए मैं आपके पास चावल लेने आया हूँ।"

"अच्छा-अच्छा! तो ये बात है!" रामातार बाबू मुस्करा दिए।

"जी।"

"लेकिन बात तो दूसरी ही है।"

"वो क्या?"

"भाई, आपने मुझे कल कविताएँ सुनाकर खुश कर दिया था। इसलिए मैंने भी 'दो बैलगाड़ी चावल ले जाइए।' कहकर आपको खुश कर दिया था। अब इसमें

चावल देने की क्या बात है?''

''क्या?'' कवि महोदय वहीं सुन्न पड़ गए।

''हां। बिलकुल ऐसी ही बात है।''

यह सुनते ही वे कवि महोदय, अपना-सा मुँह लेकर अपने घर लौट आए। लग रहा था जैसे उनके ऊपर मुसीबतों के पहाड़ ही टूट पड़े हों।

इस प्रकार रामातार बाबू की रईसी को देखकर, उनके दौलतखाने में आदमी आते-जाते रहते थे। वैसे वे पेशे से वकील हैं। इसलिए भी लोग राय-मशविरा लेने के लिए उनके पास आते-जाते रहते हैं। उनकी बातचीत आए हुए लोगों से बहुत देर तक होती रहती। लेकिन जब वे आदमी जाने के लिए उठते तो कह देते, ''चाय पीकर जाइएगा।'' जबकि उनके पास आए हुए उन्हें काफी समय हो चुका होता है। लेकिन इस बीच उन्हें चाय पिलाने की थोड़ी भी याद नहीं रहती। अंत में आदमी बिना चाय पिये ही लौट जाया करते। इस प्रकार दिन भर उनके पास पंद्रह-बीस आदमी तो आते-जाते ही रहते थे। लेकिन चाय पीने का अवसर मात्र चार-पांच को ही मिल पाता था। फिर कलुआ भी अपने मालिक की बात अच्छी तरह से समझता था कि किसे चाय देनी है, किसे नहीं!

रामातार बाबू ने कलुआ को पहले ही समझा रखा था कि तुम्हें जब भी किसी चीज को लाने के लिए कहा जाए तो तुम मुझसे यह पूछना, ''मालिक, कहाँ का सामान लाएँ? स्विटजरलैंड का, अमेरिका का या फ्रांस का?'' तब मैं कहूँगा कि वहाँ की चीज लेते आओ। इस प्रकार अपने देश का सामान होते हुए भी रईस मिजाज के रामातार बाबू कहा करते, ''यह सामान फ्रांस का है, यह चीन का है।'' एक दिन अजीब ही वाकया हो गया!

हुआ यह कि एक दिन रामातार बाबू की बीवी का भाई उनके यहाँ चला आया। आकर वह ड्राइंग रूम में बैठ गया। तब रामातार बाबू ने कलुआ को पुकार कर कहा, ''अरे कलुआ! जरा अपनी मालकिन को तो भेजना!'' यह सुनकर कलुआ ने आकर उनसे पूछा, ''मालिक, कहाँ की मालकिन बुलाऊँ? अमेरिका की, स्विटजरलैंड की या फ्रांस की?''

यह सुनकर उनके साले साहब के चेहरे के भाव अचानक बदल गए। उसकी समझ में नहीं आ पा रहा था कि वह अपने जीजाजी से क्या कहें! फिर भी, नौकर की बात सुनकर उसका चेहरा तमतमा आया था। फिर तो बखेड़ा ही खड़ा हो गया! उसने पूछा, ''क्यों जीजाजी, आपने मेरी दीदी के अलावा भी दूसरी शादियाँ की हैं?''

''नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।'' रामातार बाबू बोले।

''फिर क्या बात है? आपका नौकर क्या बोलता है? क्या सचमुच में

आपने...।''

''ऐसी कोई बात नहीं है, मेरे भाई!'' रामातार बाबू ने पुनः झुँझलाकर कहा।

''फिर आपका नौकर क्यों बोल रहा है कि अमेरिका की बुलाऊँ या स्विटजरलैंड की?''

साले साहब ताव खा गए, ''सच-सच बताना, जीजाजी! मेरी दीदी के अलावा आपने कितनी शादियाँ की हैं? आप मुझे कमजोर न समझिए। मैं वह चिनगारी हूँ जो महलों को भी पल में फूँककर रख देता हूँ। आखिर आपने अपने को समझ क्या रखा है?''

''भाई मेरे! जरा ठंडे दिमाग से तुम्हीं सोचो न! मैं अगर दूसरी शादी करता तो तुम्हें मालूम न हो जाता?''

''जरूर मालूम होता।''

''खैर इन पचड़ों को छोड़ो। अभी तुम बच्चे हो। जब बड़े हो जाओगे तो सब कुछ समझ लोगे।''

तब तक कलुवा नौकर उनकी पत्नी को साथ लेकर, वहाँ उपस्थित हो गया था।

रामातार बाबू की बीवी शकुंतला ने जब ड्राइंगरूम में हाय-तौबा सुना तो वह भी हैरान रह गई। तब उसने सोचा, आज यहाँ पर न जाने कौन-सा पहाड़ टूट पड़ा है! वह मामला समझने का प्रयास करने लगी। फिर वह अचानक खिलखिलाकर हँस पड़ी।

इससे जीजा-साले दोनों ही सन्नाट में आ गए। तभी शकुंतला हँसती हुई बोली, ''अनू, तुम भी इनके झाँसे में आ गए! तुम्हें मालूम नहीं कि ये तो इनकी रईसी के ही लटके-झटके हैं। तेरे जीजा रईस मिजाज के हैं न! इनके तो यही अंदाज हैं। इन्होंने नौकर को समझा रखा है कि कब, किससे क्या व्यवहार करना है! जिससे इनकी रईसी में चार चाँद लगने लगें।''

सुनकर साले साहब भी जोर से हँस पड़े।

उस दिन रामातार बाबू अपने मित्रों के साथ शतरंज खेल रहे थे। वे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे और वहाँ चाय-पर-चाय आ रही थी। लगता था जैसे वह खेल पूरी तरह से जम गया हो! फिर रामातार बाबू भी तो उस खेल में पूरी तरह से रमे हुए थे। सच कहिए तो वे पूरे जोश में डूबे हुए थे! तभी उनके पास नौकर दौड़ा-दौड़ा आया। उसने हाँफते हुए कहा, ''मालिक!''

''बोल, की बात?'' उन्होंने नौकर से पूछा।

''मालिक! मालिक!''

''अरे, बोल न!''

"मालिक, अपने के खेत पर जो मकान हलई न, ओकरा में आग लग गेलई है।"

"रे कलुआ, आग लग गेलई ह तो तोरा जल्दी न कहे के चाही, तू आज हमर सत्यानास कर देले।"

"मालिक, अपने न कहली र, अतिथी के रहले पर, जो बात कहे के कान में कहे के चाही। यही कारण हम अपने के कान में धीरे से बात कहली ह!"

"तो तोरा समझ में न आवेसऊ कौन काम जरूरी है, कौन जरूरी न हई।" यह कहकर वे जल्दी से अपनी बग्घी गाड़ी में, अपने गाँव की ओर चल दिए।

गाँव पहुँचकर उन्होंने देखा कि उनका खूबसूरत मकान आग में जलकर पूरी तरह से स्वाहा हो चला है। वहाँ गाँव के लोग अब भी बाल्टियों से पानी फेंक रहे थे। फिर उन्होंने अपनी आदत के अनुसार वहाँ के लोगों को सुनाया, "कोई बात न हई। हमर एक ही मकान जलल ह। कई और जल जैतक र तो हमरा के अवसोस न होइल र।" यह कहते हुए उन्होंने अपनी जिह्वा पर कितना जोर दिया था, यह उनका दिल ही जानता था।

अहसान फरामोश

उस दिन नीलम बाबू मार्केट में घूम रहे थे तभी उनके एक मित्र राम गोपाल बाबू, जो अपनी जीप से लौट रहे थे, सहसा उनकी नजरें नीलम बाबू पर जा पड़ीं। तब उन्होंने अपने ड्राइवर से कहकर उन्हें अपने पास बुलवा लिया। वे अब हेल्थ मिनिस्टर बन गए हैं। इसकी सूचना नीलम बाबू को देकर उन्होंने उनसे सचिवालय चलने को कहा। आज उन्हें वहाँ अपना पद-भार सँभालना था। यह सुनकर नीलम बाबू बहुत खुश हुए। हालाँकि वे स्वयं भी तीन-चार बार एम.एल.ए. का चुनाव लड़ चुके हैं। किंतु दुर्भाग्यवश वे जीत नहीं पाए थे।

घर आकर राम गोपाल बाबू सज-धजकर सचिवालय जाने के लिए तैयार हो गए। फिर उन्होंने पूजा-घर में जाकर अपने इष्ट देवता को प्रणाम किया और नीलम बाबू को साथ लेकर सचिवालय चल दिए। वहाँ पहुँचते ही लोग सैल्यूट मारकर उनका स्वागत करने लगे। नीलम बाबू को यह सब देखकर आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे कि एक अदना-सा आदमी जो उनसे भी जूनियर है, उसे कितना मान-सम्मान मिल रहा है! तभी राम गोपाल बाबू उस हॉल की ओर जाने लगे, जहाँ उनका स्वागत होना था और उन्हें पद-भार ग्रहण करना था। वहाँ उनके बैठते ही सारे लोग अपनी सीटों पर बैठ गए। उसके बाद उनके कैबिनेट के सेक्रेटरी ने उनके पास आकर कहा, "सर, देख लीजिए, कोई कमी तो नहीं रह गई!"

"ये जो टेबल पर काले रंग का सनमाइका लगा है, इसे सफेद होना चाहिए।" राम गोपाल बाबू बोले। "इसे आज ही बदलो। और हाँ, मुझे कौन-सी गाड़ी मिल रही है? पूछो तो।"

"आपको काले रंग की एम्बेसडर कार मिल रही है।" उन्हें बताया गया।

"नहीं। मुझे सफेद गाड़ी चाहिए। चाहे जैसे भी हो, अधिकारियों से कह दो।"

"जी।" यह कहकर, कैबिनेट सचिव वहाँ से चल दिए।

नीलम बाबू बॉथरूम जाने के लिए हॉल से बाहर जाने लगे, तभी बाहर गेट पर उन्हें एक आदमी खड़ा मिला। उसने नीलम बाबू से कहा, "आप राम गोपाल बाबू के बहुत ही नजदीकी हैं। कृपया मेरे इस 'वफसीट' पर उनसे साइन

करवाकर मुझे लौटा दीजिए।''

नीलम बाबू 'वफसीट' का अर्थ नहीं समझते थे। फिर भी उन्होंने कहा, ''कोई बात नहीं। एक छोटा-सा साइन ही तो करवाना है। उन्होंने वह 'वफसीट' अपने हाथ में ले लिया। बॉथरूम से लौटकर वे राम गोपाल बाबू के साथ कुर्सी पर बैठ गए। उस समय वे पद ग्रहण की प्रक्रिया से गुजर रहे थे। नीलम बाबू ने उन्हें धीरे से कहा, ''मित्र, तुम्हें इस छोटे-से कागज पर एक छोटा-सा साइन करना है। बस!''

''कैसा साइन?'' राम गोपाल बाबू उस कागज को देखकर आश्चर्यचकित रह गए। तब उन्होंने पूछा, ''अरे मित्र! जानते हो यह क्या है? यह 'वफसीट' है। यह कागज तो पी.ए. के लिए होता है। क्या तुम इस आदमी को अच्छी तरह से जानते हो कि यह कौन है?''

''हाँ-हाँ। हम जानते हैं। अच्छी तरह से जानते हैं।'' नीलम बाबू जोश में आकर बोले। इतने आदमियों के बीच, वे अपनी बेइज्जती कैसे होने देते? इसलिए उनके बार-बार पूछने पर उन्होंने कहा, ''मैं इस आदमी को अच्छी तरह से जानता हूँ।'' सच तो यह था कि नीलम बाबू ने उस अपरिचित आदमी को पहली ही बार देखा था। वह उनसे पहले कभी नहीं मिला था!

नीलम बाबू के पूरे आश्वासन पर राम गोपाल बाबू ने उस कागज पर अपने हस्ताक्षर कर दिए। उसे लेकर नीलम बाबू बाहर गेट की ओर चल दिए। उन्होंने वह कागज उस अपरिचित को थमा दिया। उस कागज को पाकर वह आदमी बहुत खुश हुआ। उसने जेब से पचास हजार रुपये निकाल लिए। नीलम बाबू यह देखकर चकित रह गए। एक छोटे-से कागज की इतनी कीमत! वे रुपया लेने में आनाकानी करने लगे, ''छोड़ो भी, दोस्त! इसके बदले तुम कभी कोई पार्टी दे देना।'' फिर उस आदमी ने उसी शाम उन्हें एक फाइव स्टार होटल में शानदार पार्टी दे डाली। सचमुच वह पार्टी नीलम बाबू के जीवन की यादगार थी। लेकिन उन्होंने उससे पैसे नहीं लिये!

वैसे नीलम बाबू कई चीजों की एजेंसी लेकर अपना व्यापार भी करते आ रहे थे। एक दिन किसी एजेंसी के ऑफिस में, वे अपना माल लेने गए हुए थे। वहाँ के मालिक ने एकाएक बात छेड़ दी, ''मेरा एक बेटा है। मैं चाहता हूँ कि उसका मेडिकल में एडमिशन हो जाए।'' यह सुनकर नीलम बाबू उत्साह से बोले, ''आपको अपने बेटे को मेडिकल में एडमिशन करवाना है, यह आपने पहले क्यों नहीं कहा? मेरा मित्र अभी-अभी हेल्थ मिनिस्टर बना है। हम उसे कह देंगे तो आपके बेटे का एडमिशन हो जाएगा।''

''हूँ। तो ऐसी बात है!''

"हाँ, रामबहादुर बाबू! मैं आज ही लौटते समय उससे मिल लेता हूँ।"

"ठीक है। उसका एडमिशन करवा दीजिए। मैं यही चाहता हूँ।" उस एजेंसी वाले ऑफिस के मालिक ने कहा।

दूसरे दिन नीलम बाबू अपने मित्र राम गोपाल बाबू से मिलने चल दिए। वहाँ उस समय डॉक्टरों का जमघट लगा हुआ था। यह देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। तब उन्होंने इसके बारे में पूछताछ की, तो पता चला कि इस राज्य के जितने भी मेडिकल कॉलेजों के डॉक्टर हैं, ड्यूटी पर न रहने के कारण, पी.ए. ने उन सबको मिनिस्टर साहब के पास बुलवाया है। इसीलिए आज यहाँ फौज जमा हुई है। देश-विदेश के वे डिग्रीधारी डॉक्टर अपनी-अपनी सर्विस को बचाने के लिए मिनिस्टर साहब को पचास-साठ हज़ार रुपये घूस देने के लिए भी यहाँ आए हुए थे। ताकि उनकी नौकरी न चली जाए!

नीलम बाबू उधर से सीधे ही अपने मित्र राम गोपाल बाबू के पास मुलाकात करने के लिए लपके। तभी उनके पी.ए. ने उन्हें टोक दिया, "आप कहाँ जा रहे हैं?"

"अरे! मैं अपने मित्र से मिलने जा रहा हूँ। हमें अपने एक मित्र के बेटे को, मेडिकल में दाखिल करवाना है।" नीलम बाबू बोल पड़े।

"आपने पहले से उनसे अपाइंटमेंट ले रखी है?" पी.ए. ने पूछा।

यह सुनकर नीलम बाबू के पाँव तले की जमीन ही खिसकने लगी। क्योंकि इसी पी.ए. को उन्होंने 'वफसीट' घाले कागज में साइन करवाकर थमाया था। आज वह उन्हें पहचान कर भी बेपहचाना कर रहा था। उसके उस व्यवहार पर वे हैरत में पड़ गए। उसका वह बर्ताव उन्हें खल रहा था। ऐसे स्वार्थी आदमी से पचास हजार रुपये न लेकर उन्होंने ठीक नहीं किया। वे सोच-विचारों में डूबने लगे। तभी राम गोपाल बाबू की नजरें उन पर पड़ीं तब उन्होंने कहा, "अरे नीलम बाबू! आइए! सीधे चले आइए। यह पी.ए. आपका ही तो दिया हुआ है। देखिए, डॉक्टरों का यहाँ कैसा जमवाड़ा लगा हुआ है! यह सब इसी पी.ए. की तो करतूत है! राजनीति में पैसा कैसे कमाया जाता है, वह यही तो सिखला रहा है।"

अपने मित्र रामगोपाल की बातें सुनकर नीलम बाबू को महान् आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे, आज का आदमी बहुत ही अहसान फरामोश होता है। आज वह इतना स्वार्थी हो गया है कि नमक का सरियत भी नहीं देता है।

मेहमान

आज मँहगाई इतनी बढ़ गई है कि घर आए मेहमान का आतिथ्य-सत्कार तो क्या, आज का आदमी स्वयं अपना गुजारा तक नहीं कर सकता। फिर उसके यहाँ मेहमान एक हफ्ते या महीने भर तक ठहर जाए तो उसका पूरा कबाड़ा ही निकल जाता है। जबकि कल तक उसके दिमाग में यह बात थी—"घर आया हुआ मेहमान देवता तुल्य होता है। इसलिए खुद भूखा रहकर मेहमान की आवभगत करनी चाहिए।" इस संबंध में कबीरदासजी ने भी तो कहा है :

साईं इतना दीजिए, जामें कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाए ॥

लेकिन आज यह सिद्धांत पूरी तरह से बदल गया है। पहले से अलग-थलग पड़ गया है। क्योंकि पहले के जमाने में चीजों की कीमतें इतनी नहीं थीं। वे सस्ती होती थीं। तब मेहमान भी देवता की तरह से होते थे। वे भी जहाँ जाते, एक आध दिन ही वहाँ रहा करते थे। वे कम दिन रहते और वहाँ भी लोगों के काम में प्रायः अपना हाथ बँटाया करते थे। ऐसे में वहाँ के लोगों को मेहमान के रहने में कोई असुविधा नहीं होती थी। तब हमारे यहाँ संयुक्त परिवार की प्रथा थी। ऐसे में किसी एक सदस्य पर बोझ भी नहीं पड़ता था। लेकिन आज ऐसी बात नहीं रही। इसके अलावा सरकार भी तो महँगाई बढ़ाने से बाज नहीं आती। उसकी महँगाई का ग्राफ तो हमेशा चढ़ता ही रहता है!

सरकार को कोई चिंता नहीं रहती कि इस महँगाई से गरीब जनता कितनी पिस रही है। फिर जनता जिए या मरे, उसे इसकी भी चिंता नहीं? वह आपके लिए कुछ भी तो नहीं करती? ऐसे में आपको ही इस समस्या का निदान खोजना होगा। आपकी अपनी सुरक्षा में ही सुरक्षा है। इसलिए सुनील ने मेहमान भगाने का एक शर्तिया नुस्खा ढूँढा है। इसे आप भी प्रयोग में लाकर देखिए।

सुनील के घर में उसके दूर के रिश्ते का साला आया हुआ था। बहन की शादी के बाद वह पहली ही बार उनके यहाँ आया था। वह बैंक की परीक्षा की प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए आया हुआ था। वह परीक्षा शहर के किसी कॉलेज में आयोजित थी। सुनील ने उसकी परीक्षाओं तक, साले साहब के

खाने-पहनने का खूब ध्यान रखा। लेकिन परीक्षाओं की समाप्ति के बाद भी साले साहब वहीं डटे रहे। वहाँ से वह उखड़ने का नाम ही नहीं ले रहा था। इससे सुनील की पत्नी रेणु बहुत परेशान होने लगी। क्योंकि वे दोनों घर आए हुए मेहमान से कुछ भी तो नहीं कह सकते थे। इसलिए वे चुप रहे। जब उसे उनके पास रहते हुए महीने से ऊपर हो चला तो दोनों मियाँ-बीवी ने एक खूबसूरत उपाय सोच लिया। फिर सुनील तो उसे भगा भी नहीं सकता था। अतः उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे दोनों आपस में खूब झगड़ेंगे। फिर वे अपना घर छोड़कर कहीं और चल देंगे। एक दिन उन्होंने ऐसा ही किया। वे घर से दूर चले गए। ऐसे में मेहमान सतीश को भी वहाँ से भाग जाना पड़ा। तब कुछ ही दूर पर खड़ा सुनील अपनी पत्नी रेणु से कहने लगा, "हम तो दिखावे के लिए ही लड़ रहे थे। तुम बुरा मान गयी।"

"मैं भी तो दिखावे के लिए ही लड़ रही थी।" रेणु बोली।

मेहमान सतीश ने जब उन्हें देखा तो उसे शंका होने लगी। क्योंकि उनके संवाद भी वह सुन चुका था। तब वह उनके पास आकर बोला, "मैं भी तो घर से भागा नहीं हूँ। अब आप दोनों घर लौट रहे हैं तो मैं भी आपके साथ ही चलूँगा।"

यह सुनकर उन दोनों मियाँ-बीवी की अक्ल चकराने लगी। वे दोनों फिर से सोच-विचारों में पड़ गए। अब क्या करना चाहिए? उन्होंने तो बुद्धि से काम लिया था। लेकिन फिर अपनी ही बातों से स्वयं जाल में फँस गए। थोड़े दिनों बाद मेहमान सतीश को नौकरी मिल गई। जिससे वह अलग रहने की व्यवस्था कर उनके यहाँ से चला गया।

कई वर्षो तक सुनील के यहाँ कोई मेहमान नहीं आया था। जिससे यह बात उसे अखरने लगी थी। फिर भी जब वह किसी परिवार में मेहमान को देखता तो वह उसे हसरतभरी नजरों से देखने लगता। वह सोचता, "काश! मेरे यहाँ भी मेहमान आते!"

एक दिन सुनील के यहाँ गाँव से एक अंकल आए और उनके यहाँ रहने लगे। शुरू-शुरू में उनकी लच्छेदार भाषा एवं बातों से वह प्रभावित होता रहा। जिससे वह उनकी खूब सेवा करता। लेकिन जब उन्हें वहाँ रहते हुए दो महीने हो आए तो उसे उनका रहना अखरने लगा। इस समय उन्हें भगाने का उसे कोई उपाय नहीं सूझ पा रहा था। इसके लिए वह धीरे-धीरे उनकी पूरी उपेक्षा ही करने लगा। कभी वह उन्हें रोटी देता और स्वयं किसी काम में लग जाता। जब वे अंकल महाशय उसे बुलाते तो वह उनकी अनसुनी ही कर डालता। फिर वह उन्हें भोजन भी देर-सबेर देने लगा। वह उन्हें रोटी माँगने पर चावल देता और चावल माँगने पर रात की बासी रोटी दे देता। दही की जगह सब्जी डाल देता और सब्जी

की जगह कभी-कभी चटनी दे दिया करता। कभी नमक ज्यादा डाल देता तो कभी उन्हें फीकी चाय की प्याली पकड़ा देता!

लेकिन मेहमान भगाने की समस्या का हल नहीं निकल पा रहा था। कभी रेणु खाना बनाने पर सब्जी नहीं बनाती। तब अंकल को नमक से ही रोटी खानी पड़ती। फिर भी अंकल नमक-रोटी खाकर ही संतुष्ट हो लेते। इस क्रिया को सुनील बार-बार करने लगा। तब एक दिन वे स्वयं ही विवश होकर भाग खड़े हुए।

उसके बाद से तो सुनील ने अपने यहाँ किसी मेहमान को ठहराने की कसम ही खा ली। क्योंकि इस अंकल को भगाने में उसे एड़ी-चोटी का श्रम करना पड़ा था। इसलिए उसने सोचा कि क्यों न ऐसा किया जाए कि हमारे यहाँ कभी कोई मेहमान ही न आए! तब उसे एक शानदार उपाय सूझ आया।

वह शहर से बीस-पच्चीस किलोमीटर की दूरी पर जमीन लेकर वहाँ मकान बनवाकर रहने लगा। तब उसके परिवार का कोई भी मेहमान आता तो शहर में रह रहे उसके बड़े भाई दिलीप बाबू के पास ही ठहरा करता। दिलीप बाबू के बोलने पर वह मेहमान कहता, "अब कौन यहाँ से बीस-पच्चीस किलोमीटर जाए! फिर हमें रात ही तो काटनी है। सुबह को तो हम चले ही जाएँगे।" यह कहकर सुनील का मेहमान भी वहीं ठहर जाता। अब सुनील मजे-मजे से अपने परिवार के साथ रहा करता है। मेहमान भगाने की इस तरकीब पर वह बहुत खुश है। पिछले पाँच वर्ष से उसके पास अब तक कोई भी मेहमान नहीं आया है। इससे वह बहुत खुश है। ऐसे में उसका जो रुपया मेहमाननवाजी पर खर्च हो जाता था, वह बच जाया करता है। अब यह सारा भार, उसके बड़े भाई दिलीप बाबू को ही उठाना पड़ता है। सचमुच उसने मेहमान को भगाने का ऐसा खूबसूरत उपाय सोचा है जिससे अब इन्हें मेहमाननवाजी भी नहीं करनी पड़ती है और समाज में इनकी प्रतिष्ठा भी बनी रहती है!

मैसेज-पर-मैसेज

मुनींद्र आज एक बहुत बड़ा पत्रकार, साहित्यकार और लेखक बन गया है। आज उसकी रचनाएँ भारत की हर छोटी-बड़ी पत्र-पत्रिकाओं में छपा करती हैं। यही कारण है कि आज कई संपादक उसके नाम को देखकर ही उसकी रचना प्रकाशित कर देते हैं। उसे बिना देखे ही वे सीधे प्रेस में भेज दिया करते हैं। इस क्षेत्र में उसने अपना 'गुडविल' बना लिया है। बीस वर्ष से वह कविता, कहानी, लघुकथा के साथ, अनेक प्रकार के लेख भी लिखा करता है। वह अपराध-साहित्य पर भी लेखनी चलाता है। प्रदेश की पंद्रह-बीस पत्रिकाओं का तो वह 'ब्यूरो चीफ' ही है। आज उसके पास मुंबई, कलकत्ता और दिल्ली के संपादक आ-आकर कहा करते हैं, "आप हमारी पत्रिका में आ जाइए। आपकी बड़ी कृपा होगी।" यही नहीं, संपादक गण उसे अपनी पत्रिका में बुलाने के लिए कई-कई सुख-सुविधाओं की बातें किया करते हैं। उसे अनेक प्रकार के ऑफर दिया करते हैं। लेकिन वह है कि अपने को किसी एक जगह बाँधना नहीं चाहता। लेखन के क्षेत्र में आजाद रहकर फ्रीलांसर बनकर वह लिखना चाहता है। ताकि किसी भी पत्र-पत्रिका के लिए वह स्वतंत्र होकर लेखादि लिख सके। वह जानता है कि एक जगह रहकर पानी सड़ जाता है। आज वह नदी की तरह स्वच्छंद होकर बहना चाहता है। वह जानता है कि ऐसे पानी का जीवन दीर्घायु वाला होता है।

आज मुनींद्र घर बैठे-बैठे ही दस-पंद्रह हजार रुपये महीने कमा लिया करता है। इसलिए वह 'वेतनभोगी' लेखक नहीं बनना चाहता। जब वह किसी भी पत्रिका से नहीं जुड़ा तो उसके कई प्रकाशकों ने कहा कि उसे फोटो खींचने आदि का खर्चा भी उनकी ओर से दिया जाएगा। उसे टूर के रुपये भी दिए जाएँगे। इसलिए वह हर पत्रिका के लिए कुछ-न-कुछ लिखता रहता है। इसके अलावा उसे प्रति रचना पाँच सौ रुपये पारिश्रमिक के भी मिल जाया करते हैं।

पत्रकारिता के क्षेत्र में मुनींद्र अपनी अलग ही पहचान बनाए हुए है। उसका अपना अलग ही अस्तित्व है। उसके इस लेखन से अधिकारी भी प्रसन्न रहते हैं। कलक्टर, एस.पी. आदि अनेक अधिकारी उसका आदर किया करते हैं। कभी-कभी वह उनकी पोल भी खोल दिया करता है। इसलिए कुछ उसके दोस्त हैं तो कुछ

दुश्मन हो गए हैं। कुछ उसके हितैषी भी हैं। ऐसे में भी उसे किसी प्रकार का भय नहीं है। कुछ कमांडो और रिटायर्ड लोग भी उसके दोस्त हो गए हैं। क्योंकि उन्हें पढ़ने-लिखने का शौक है। फिर वह स्वयं भी एक अच्छा वकील है। इसलिए कुछ वकील और जज भी उसके मित्र हैं।

मुनींद्र कंधे पर बैग रखे साइकिल लिये हुए पूरा शहर निर्भय होकर घूमता रहता है। उसके पास टेलीफोन भी नहीं है। उसके पास तो कुछ सादे कागज हैं, एक कलम है और सवारी के लिए मात्र एक साइकिल ही है। मिलने वाले उसका टेलीफोन नंबर माँगा करते हैं। इस पर वह कहा करता है, "मेरा अपना कोई फोन नहीं है। फिर भी, आप चाहें तो मेरे पड़ोस का नंबर ले सकते हैं। फोन आने पर वे मुझे बुला लेंगे। आप चाहें तो उन्हें अपना मैसेज भी दे सकते हैं।"

लेकिन उसने जिस पड़ोसी का फोन नंबर दिया उससे वह बहुत परेशान रहने लगा। इसका उसे बुरा अनुभव हुआ। जिसने भी उसे फोन किया, वह परेशान हो उठा!

उस दिन मुनींद्र के लिए कलकत्ता से फोन आया था। किसी पत्रिका के संपादक उससे बात करना चाहते थे। तब उन्होंने उसके पड़ोसी नृपेंद्र का फोन मिलाया था। जिससे उसने फोन पर बातें इस प्रकार कीं, "मैं भी एक बहुत बड़ा साहित्यकार हूँ। अरे, मुनींद्र को कुछ आता है क्या? उसे तो मैंने ही पढ़ना-लिखना सिखाया है। शुरू में वह अपनी रचनाएँ छपवाने के लिए, मेरी मिन्नतें किया करता था। मैं उनमें सुधार कर उन्हें पत्र-पत्रिकाओं में छपवा दिया करता था।"

"अरे भैया, मैं कलकत्ता से बात कर रहा हूँ। प्लीज! आप उनसे मेरी बात करवा दीजिए।" उधर से कहा गया।

"देखिए, उसे कुछ भी नहीं आता। आप मुझसे बात कीजिए। आप जैसी रचनाएँ कहेंगे, मैं भेज दिया करूँगा। मैंने हिंदी में एम.ए., पी-एच. डी. की है। आप अगर मेरी रचनाएँ देखेंगे तो प्रभावित हुए बिना नहीं रहेंगे। इसलिए आप उसे क्यों खोज रहे हैं? वो तो अभी हमारे सामने बच्चा ही है। कहिए तो आपकी पत्रिका के लिए मैं कुछ रचनाएँ आपके पास भेज दूँ। आपको मालूम है, साहित्यकार आचार्य महेंद्र बल्लभ शास्त्रीजी की जो 'अलबेला', पत्रिका निकल रही है, उसे मैं ही तो देख रहा हूँ। एक बार आप उस पत्रिका को देख लेंगे तो मेरा लोहा मानने लगेंगे। आप मेरे संपादन को दाद देने लगेंगे।"

"देखिए, आप प्लीज मुनींद्रजी को बुलवा दीजिए। उनसे जरूरी काम है।"

"आप मेरी 'अलबेला' पत्रिका एक बार देख लेते तो...।"

कलकत्ता का वह संपादक सैकड़ों रुपये खर्च कर, मुनींद्र से संपर्क करना चाहता था। वह उससे दो-तीन कहानियाँ मँगवाना चाहता था। लेकिन नृपेंद्र ने

उनसे उसकी बातचीत नहीं करवाई। तब उस संपादक ने झल्लाकर फोन रख दिया था।

दूसरी बार नृपेंद्र के यहाँ शहर की कलक्टर मणिबाला का फोन आया। उस समय कलक्टर साहिबा उसी को खोज रही थीं। वे शहर के लिए कुछ अच्छे कार्य कर रही थीं। इसलिए वे अपने मैटर को ठीक प्रकार से उससे संशोधित कर, पत्रिकाओं में छपवाना चाहती थीं। इसी संबंध में वे मुनींद्र से बात करना चाहती थीं। लेकिन नृपेंद्र उसका पड़ोसी, अपनी ही गाने लगा था—"आप तो बड़े अच्छे काम कर रही हैं। बेरोजगारों व बेसहारा महिलाओं को सहारा दे रही हैं। महिलाओं को 'गृह-उद्योग' लगवाने की व्यवस्था कर रही हैं। सचमुच आप गरीबों की मसीहा हैं।"

"ये सब तो करना ही होता है। आखिर मैं यहाँ की कलक्टर हूँ। यहाँ का भला-बुरा मुझे ही तो सोचना होता है। फिर मैं क्यों न अच्छे काम करूँ?"

"वो तो है ही। मैं भी आपके कार्यक्षेत्र में घूमा हूँ। लोग आपके इन कार्यों से प्रभावित हैं। यही कारण है कि लोग आपकी पूजा, माँ दुर्गा, मदर टेरेसा की तरह करने लगे हैं। सचमुच आप महान् विभूति हैं।" नृपेंद्र उनसे चापलूसी करने लगा था।

"देखिए, मुनींद्र जी हैं या नहीं? मुझे अभी स्पॉट पर जाना है।"

"उसे सवेरे तो देखा था। अब कहाँ होगा, कहा नहीं जा सकता। फिर भी, मैं किसी से उन्हें बुलवाता हूँ।"

"ठीक है। बुलवा दीजिए।" कलक्टर बोलीं।

"अभी तक तो वह नहीं मिला, मैडम! वो सुबह ही कहीं निकल गया था।" थोड़ी देर के बाद नृपेंद्र ने कहा।

कलक्टर साहिबा को नृपेंद्र की बातों पर जरा भी विश्वास नहीं हुआ। तब उन्होंने अपने पिअन को आदेश दिया, "जाओ, मुनींद्र जी को साथ बुलाकर लाओ। तुम्हें यदि थोड़ा रुकना भी पड़े तो रुककर उन्हें साथ लेते आना।"

कलक्टर का पिअन मुनींद्र को लेने वहाँ से चल पड़ा। पंद्रह-बीस मिनट बाद वह मुनींद्र के पास पहुँचकर उनसे बोला, "अभी-अभी मैडम ने आपको फोन किया था। उन्हें पता चला कि आप घर में नहीं हैं। इसलिए उन्होंने मुझे आपको साथ लाने को कहा है।"

"हाँ। मैं अभी-अभी ही आया हूँ। कोई खास बात?"

"आपको उन्होंने बुलवाया है।" पिअन ने बताया।

"अच्छा!"

"उन्होंने कहा है कि अगर रुकना भी पड़े तो रुक जाना। उन्हें साथ ही लेते

आना। शायद कोई बहुत ही जरूरी काम हो।"

"ऐसा है तो चलिए।" कहकर मुनींद्र ने साइकिल निकाली और पिअन के साथ चल पड़ा।

अपने ऑफिस में कलक्टर साहिबा मुनींद्र की ही इंतजार में बैठी हुई थीं। वे कुर्सी से आधी उठकर मुनींद्र का स्वागत करने लगीं, फिर उसने कहा, "मैंने आपको फोन किया था। मालूम हुआ कि आप घर में नहीं हैं। इसलिए मैंने रामलाल को आपके पास भेजा।"

"कहिए, कोई खास बात?" मुनींद्र ने पूछा।

"खास यही है कि हमें अभी स्पॉट पर चलना है।"

"ठीक है, चलिए।"

बाहर आकर ये दोनों एक जीप में बैठ गए। रास्ते में बातचीत के क्रम में कलक्टर ने उससे पूछा, "ये नृपेंद्र कौन हैं? वे तो अपनी ही गाए जा रहे थे। इसके अलावा उन्हें कुछ भी नहीं सूझ रहा था।"

"वे बहुत ही महत्त्वाकांक्षी महाशय हैं। हमारे लेखन से बहुत जला करते हैं। वे सोचते हैं कि मैं कैसे लिख लेता हूँ! मेरी रचनाएँ अनेक पत्रिकाओं में कैसे छप जाती हैं? इसलिए वे चाहते हैं कि...।"

"लेकिन इसका अर्थ यह तो नहीं कि जो फोन पर बात करे उसे पागल ही कर दे!"

कलक्टर साहिबा का स्पॉट आ चुका था। वहाँ मुनींद्र को एक आध घंटे तक रहना पड़ा। बाद में उसने उसकी अच्छी रिपोर्टिंग तैयार कर एक अच्छे से अखबार में छपवा दी। उस समाचार से चारों ओर से कलक्टर की प्रशंसा होने लगी। उन्हें हजारों की संख्या में लोग प्रोत्साहन देने लगे। इससे कई सामाजिक संस्थानों ने उन्हें सम्मानित व पुरस्कृत भी किया। ऐसे में वे एक चर्चित महिला अधिकारी बन बैठीं। जिससे कलक्टर साहिबा बहुत प्रसन्न हो गई।

उन्हीं दिनों कलक्टर साहिबा नृपेंद्र को फोन मिलाकर कहने लगीं, "कृपया मुनींद्रजी को बुलवा दीजिए।"

"आदरणीया कलक्टर साहिबा! मुनींद्र को कुछ भी तो पढ़ना-लिखना नहीं आता। यदि आप मुझे एक बार मौका दें तो मैं आपके कार्य को विस्तार से रिपोर्टिंग तैयार कर आपके व्यक्तित्व में चार-चाँद लगा दूँग। ऐसे में आप देश में ही नहीं, विदेशों में भी चर्चित होने लगेंगी। आप हर कहीं पूजित व सम्मानित होने लगेंगी।"

"देखिए, ये सब छोड़िए। आप मुनींद्रजी को बुलवा दीजिए।"

"मुझे भी तो आप कभी-कभी अपनी सेवा का अवसर दीजिए न।" नृपेंद्र

'मान न मान मैं तेरा मेहमान' की तरह से कलक्टर के पीछे ही पड़ गया।

"देखिए, मैं तो इतना जानना चाहती हूँ कि मुनींद्रजी हैं या नहीं। आप जरा मालूम कर लें।"

"ठीक है। मैं मालूम करवाता हूँ।" नृपेंद्र ने हथियार डाल दिए।

नृपेंद्र ने मुनींद्र को बुलवा लिया। उसने फोन उठाकर कहा, "हलो! मैं मुनींद्र बोल रहा हूँ।"

"मुनींद्रजी, आप जरा मेरे ऑफिस चले आइए। गाड़ी हम भेज रहे हैं। आज आदिवासी क्षेत्र में कुछ 'नारी उत्थान' का कार्यक्रम है।"

"ठीक है। मैं आ जाऊँगा, आप गाड़ी कब भेज रही हैं?"

"अभी दसेक मिनट में गाड़ी आपके पास पहुँचने वाली है", वे बोलीं।

कलक्टर की बातचीत के बाद नृपेंद्र ने मुनींद्र से कहा, "भाई मुनींद्र, तुम्हारी तो चाँदी ही चाँदी है। कलक्टर और अन्य अधिकारी सभी तो तुमसे खुश हैं। आखिर ऐसी क्या बात है?"

"बात क्या होगी! मुझमें आदमीयत जो है।" यह कहकर मुनींद्र मुस्करा दिया।

"कलक्टर और दूसरे अधिकारी भी तुम्हारे आस-पास चक्कर काटा करते हैं", नृपेंद्र बोला, "मुझे तो कुछ और ही लगता है।"

"अब आपको क्या समझाएँ! पढ़े-लिखे होकर भी आप बेवकूफों जैसी बातें करते हैं। आज मैं आपके विषय में कह दूँगा कि मुझे नहीं, इन्हें ही बुलवाइए।" मुनींद्र उस पर झुँझलाकर बोल पड़ा।

"ऐसा न करना, भाई। मैं बदनाम हो जाऊँगा।" नृपेंद्र बोला।

"फिर आप ऐसी बातें क्यों किया करते हैं?" मुनींद्र ने गुस्से से कहा। उसके बाद वहाँ से वह अपने घर चला आया।

वह दीवाली की रात थी। मुनींद्र नृपेंद्र के यहाँ टेलीफोन करने आया था। लेकिन उस पर ताला लगा हुआ था। मुनींद्र ने उससे कहा, "जरा ताला तो खोलना। मुझे फोन करना है।"

"एस.डी.ओ. साहब के यहाँ न?" उसने पूछा।

"हाँ।"

"अरे बाप रे! तुम उस ऊँचे अधिकारी से फोन करोगे? तुम नहीं जानते कि यदि तुम फोन करोगे तो वह सारी बातचीत टेप हो जाएगी! फिर उस पर सी.बी. आई. बैठ जाएगी। मेरी मानो तो तुम वहाँ फोन न करो।" नृपेंद्र ने कहा।

"क्या बेवकूफी की बातें करते हो!"

"हाँ, मुनींद्र! इस सब पर तुम विश्वास नहीं करोगे। लेकिन आजकल तुम

देख ही रहे हो न कि घर-घर टेलीफोन टेप हो रहे हैं। आए दिन इसकी खबरें अखबारों में छपती ही रहती हैं। क्या यह बात तुमसे छिपी हुई है?''

''अच्छा!''

''हाँ। मैं ठीक कह रहा हूँ।''

''आप भी क्या ऊटपटाँग बातें करते हैं। ठीक है। रखिए अपना टेलीफोन। हम बाहर के किसी बूथ से कर लेंगे।''

''खैर! इस बात को छोड़ो। तुम्हारे पास आज कई पत्र-पत्रिकाएँ हैं। तुम मुझे उनमें छपने का मौका दो न!'' नृपेंद्र ने कहा।

''इसमें मैं तुम्हारी क्या मदद कर सकता हूँ?''

''तुम्हारे पास संपादक स्वयं ही चले आते हैं। उन्हीं में से किसी से...।''

''मेरी लेखनी में दम है। तभी तो वे मेरी रचनाएँ छापा करते हैं। तभी तो वे मेरे पास चले आते हैं। आप भी अपनी लेखनी में जान डालिए। फिर आपके पास भी संपादक दौड़े-दौड़े चले आएँगे।''

''तुम किसी संपादक से मेरी पैरवी कर दोगे तो मेरा काम बन जाएगा।''

''देखिए, मैं इस काम को पिछले बीस वर्षों से करता आ रहा हूँ। लेकिन आप तो तीसेक वर्ष से यही कार्य करते आ रहे हैं। मैं तो एक छोटा-सा तारा हूँ, जबकि आप सूर्य के समान हैं।'' यह कहकर नृपेंद्र से पीछा छुड़ाकर मुनींद्र अपने घर चला आया।

एक दिन मुनींद्र के दादाजी का स्वर्गवास हो आया। सभी शोकाकुल थे। इस बीच नृपेंद्र का एक तार आया। उसमें उसे 'बहुत-बहुत मुबारक हो' लिखा हुआ था। दुख के समय ऐसे हास्यास्पद शब्दों से सभी को गुस्सा आ गया। मुनींद्र के चाचाजी खून की घूँट भरकर रह गए। उन्होंने चुपचाप क्रियाकर्म की रस्म पूरी की।

एक सप्ताह बाद जब मुनींद्र अपनी अलमारी में किसी पुरानी पुस्तक को खोज रहा था तो उसे वह तार अलमारी में रखा हुआ मिला। जिसे पढ़कर वह स्तब्ध ही रह गया। उस पर जब उसने नृपेंद्र का नाम पढ़ा तो सारी बात उसकी समझ में आ गई। क्योंकि पिछले महीने नृपेंद्र के पूछने पर, उसने उसे अपना बर्थडे बतला दिया था। तब उसे प्रभावित करने के लिए ही उसने वह तार भेजा था। अपनी रचना छपवाने के लिए ही उसने उस पर मस्का लगाया था। वही तार दादाजी की मृत्यु पर उनके हाथ लगा था। तब मुनींद्र ने परिजनों के आगे, सारी बात स्पष्ट की। तभी वे लोग शांत हो पाए।

एक दिन 'फिल्मी दुनिया' के जाने-माने निर्माता-निर्देशक श्यामलालजी नाहटा मुनींद्र के लिए फोन करने लगे। वह नृपेंद्र का फोन था। इसलिए उसी ने वह फोन उठाया, ''हलो!''

"मुझे मुनींद्रजी से बात करनी है।" नाहटा बोले।

"अभी तो वे हैं नहीं। आप कहाँ से बोल रहे हैं?" उसने पूछा।

"मैं मुंबई से फिल्म निर्माता नाहटा बोल रहा हूँ।" मुनींद्रजी की एक कहानी पर मैं फिल्म का निर्माण करना चाहता हूँ।"

"क्या?" नृपेंद्र ने आश्चर्य से कहा।

"जी हाँ। मैं उनकी कहानी पर एक फिल्म बना रहा हूँ। कृपया आप उन्हें बुला दें।"

"अरे साहब, उसकी कहानी में कोई जान नहीं होती। उसने जब कहानी लिखनी शुरू की थी तो उस समय मैं गंभीर कहानियाँ लिख रहा था। मैं पिछले चालीस वर्ष से लिखता आ रहा हूँ। मैंने उपन्यास भी लिखे हैं। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यदि आप मेरी कहानियों और उपन्यासों पर फिल्म बनाएँगे तो वह 'सुपरहिट' साबित होगी। मैं आपसे एक पैसा भी नहीं लूँगा।" नृपेंद्र बोला।

"देखिए, प्लीज! आप उनसे बात करवा दीजिए।"

"वो अभी नहीं हैं।" नृपेंद्र ने उन्हें टरका दिया।

"ठीक है। आप कृपया उन्हें मेरा मैसेज दे दीजिएगा। मैं कल की फ्लाइट से आ रहा हूँ।" नाहटा बोले।

"ठीक है। लेकिन मेरी कहानी पर...।" तब तक उस ओर से फोन का संपर्क कट गया था।

मुनींद्र से नाहटा साहब की बात नहीं हो पाई थी। नृपेंद्र के दुर्व्यवहार से चिढ़कर नाहटा साहब ने फोन काट दिया था। फिर भी, नृपेंद्र फोन पर 'हलो! हलो!' करता रहा। बाद में उसने मुनींद्र को वह मैसेज भी नहीं दिया!

दूसरे ही दिन नाहटा साहब मुनींद्र से मिलने के लिए उसके पास चले आए। उनके हाथ में 'मनोरंजन' पत्रिका थी। उसने उन्हें अपना वह पुराना कमरा दिखलाया, जहाँ उसने वह कहानी लिखी थी। साथ ही उसने नीचे के ढाबे से चाय और कुछ बिस्कुट भी मँगवा लिये। चाय पीते हुए नाहटा साहब ने कहा, "मुनींद्र जी, आपकी इस कहानी पर हम आपको पचास हजार रुपये दे रहे हैं। आप हमें इसके फिल्माने की इजाजत दे दें।"

यह सुनकर मुनींद्र को विश्वास ही नहीं हुआ। फिर भी, वह बहुत खुश हो गया। तब उसने फिल्म निर्माण की इजाजत, उन्हें लिखकर दे दी। सचमुच उसकी वह कहानी बहुत अच्छी थी। आज उसने पहली बार, पैसे की खातिर, फिल्मी ग्लैमर से वशीभूत होकर अपनी वह कहानी बेची थी।

तीसरे दिन मुनींद्र नृपेंद्र के पास जाकर बोला, "मित्रवर, मैंने अपने परिचितों को आपका फोन नंबर इसलिए दिया था कि आप उनके मैसेज मुझ तक पहुँचा

सकें। लेकिन आप तो उन लोगों के साथ उलूल-जलूल बातें करते रहे। परसों नाहटा साहब का फोन आया था, लेकिन आपने मुझे उनका मैसेज नहीं दिया।''

''हाँ-हाँ। उनका फोन जरूर आया था। लेकिन...।''

''छोड़िए भी इस लेकिन-वेकिन को! शायद आपने सोचा होगा कि मेरी कहानी नहीं बिकेगी। लेकिन मेरी 'मेरिट' को कोई भी नहीं झुठला सकता। यह देखिए, उन्होंने मुझे उस कहानी के लिए पचास हजार रुपये दिए हैं।'' मुनींद्र उसे चैक दिखलाते हुए बोला।

''क्या?'' नृपेंद्र उस चेक को आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा।

''हाँ। अब मैंने भी सोच लिया है कि...।''

''क्या?''

''कि मैं भी खुद का फोन लगवा लूँ। फिर देखते हैं कि आप कैसे मेरी 'मेरिट' को प्रकाश से अँधेरे की ओर धकेलते हैं!''

''अरे!''

''हाँ। अब ऐसा ही होगा। आप मेरे परिचितों को फोन पर परेशान किया करते हैं।'' यह कहकर मुनींद्र उसके पास से अपने घर चला आया।

उसी दिन मुनींद्र ने टेलीफोन अधिकारी को फोन लगाने के बाबत एक अर्जी दे दी। उसने उसे प्राथमिकता के आधार पर देने की प्रार्थना की। तब उसे वी.आई.पी. कोटे से दूसरे ही दिन फोन मिल गया। टेलीफोन लगते ही मुनींद्र इसकी सूचना देने के लिए नृपेंद्र को फोन करने लगा, 'लेकिन वह फोन पर अपनी ही राह-कहानी कहने लगा। तब मुनींद्र ने कहा, ''माफ करना मित्र, अब आपको मेरे लिए परेशानी नहीं उठानी पड़ेगी। मेरे यहाँ मेरा खुद का फोन लग गया है।'

''क्या?''

''हाँ। मैं सही कह रहा हूँ। आपसे बात भी अपने ही फोन से कर रहा हूँ।''

''क्या?'' उधर नृपेंद्र का मुँह खुला-का-खुला ही रह गया। उसके लिए तो वह जैसे दुनिया का आठवाँ आश्चर्य ही था।

छप्पर से धन-वर्षा

राम गोपाल ने जब से होश सँभाला है, वह यही सुनता आ रहा है कि 'भगवान जब देता है तो छप्पर फाड़ कर दिया करता है।" यह सुनकर वह बहुत खुश होता है। इस बारे में उसने कई घटनाएँ सुनीं! जैसे कि किसी की लॉटरी निकल आई है। किसी को धरती में गड़ा हुआ धन मिल गया है। किसी को उसके नाना-नानी या दादा-दादी द्वारा वसीयत में लिखी संपत्ति मिल गयी! वह गरीब आदमी था। उसके सामने इसी प्रकार धन प्राप्त होने की चाह दिन-प्रति-दिन बढ़ती चली गई!

राम गोपाल ने दूर-दूर तक निगाहें दौड़ाई। लेकिन कहीं भी उसे कोई ऐसा रिश्तेदार नहीं मिला जो उसके नाम अपनी संपत्ति लिख देता। लाख रिश्ता ढूँढ़ने पर भी उसे इस दिशा में निराश ही होना पड़ा। उसने आसपास के निःसंतान परिवारों की भी टोह ली। पर उसे सफलता नहीं मिली। तब उसने लॉटरी की बात सोची। फिर वह एक-एक पैसा जोड़कर लॉटरी के टिकट खरीदने लगा। उन टिकटों के चक्कर में वह भूखे ही रहने लगा। रात को भी वह लॉटरी के ही सपने देखा करता। ऐसे में उसकी पत्नी लक्ष्मी परेशान रहा करती। कारण, जब देखो वह लॉटरी काउंटर पर ही रहता। जबकि इतिहास इस बात का गवाह है कि आज तक कोई भी जुए से धनी नहीं बना है। फिर भी, वह लॉटरी का मोह नहीं छोड़ पाया। लॉटरी खरीदना उसके लिए जरूरी हो गया है। इसलिए उसके आस-पास के लोग उसे 'पक्का जुआरी' कहने लगे थे!

खैर! बहुत दिनों के बाद राम गोपाल को होश आया। अब तक हजारों हजार रुपये, उसके लॉटरी में बर्बाद हो गये थे। उसमें उसका घर-गृहस्थी का सामान तक बिक गया था। उसकी पत्नी ने तिनके-तिनके जोड़-जोड़कर जो घर बनाया था, उसकी लॉटरी के शौक ने उसे तबाह कर डाला था। इसके लिए रोज-रोज उसकी पत्नी से किच-किच होती रहती थी। ऐसे में उसके यहाँ अशांति रहा करती थी। वह दूसरों को तनाव में रखता और स्वयं भी उसे झेलता रहता था। वह तो यही कह रहा था, "आ रे बैल मुझे मार, और अपने गले का फंदा मेरे गले में डाल!"

राम गोपाल जब लॉटरी से तंग आ गया तो वह सोचने लगा कि क्यों न वह

ब्राह्मण का पेशा अपना ले! इसके लिए वह एक मंदिर में, मात्र सौ रुपये माहवारी पर, वहाँ पंडित के पद पर नियुक्त हो गया। उसके लिए सौ रुपये महीना बहुत ही कम था। वह जानता था कि धर्म के क्षेत्र में पंडिताई का धंधा अच्छा चलता है। वहाँ उसे अनेक लोगों से, अनेक प्रकार के धार्मिक संस्कार करवाने के अवसर प्राप्त होंगे। उस पूजा-पाठ में हो सकता है कोई धनी-मानी आदमी, उसे दाननामे में, कहीं कोई संपत्ति ही दे डाले! कौन जाने कोई मकान या दुकान ही उसे दे डाले! लेकिन भगवान ने उसे कहीं से भी छप्पर फाड़कर धन नहीं दिया। एक दिन उसने एक सपना देखा।

उस सपने में लक्ष्मीजी स्वयं ही चलकर उसके पास चली आईं। चूँकि राम गोपाल बहुत ही गरीब था। इसलिए लक्ष्मीजी ने कुछ दिन, उसके पास ही रहने का निश्चय किया था। उस समय वह बाजार जा रहा था। लक्ष्मीजी उसे रास्ते में ही मिल गईं। तब उन्होंने कहा, "राम गोपाल, मैं तुम्हें ही ढूँढ़ रही थी। तुम कहाँ रहते हो? यह भी अच्छा हुआ जो तुम मिल गए!"

"आप मुझे सचमुच में खोज रही थीं?" उसने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ। मैं तुम्हें ही खोज रही थी। लगता है तुम कहीं जा रहे हो? आखिर, तुम कितनी देर में घर लौटोगे?"

"बस, थोड़ी ही देर में।" उसने कहा।

"ठीक है। जब तक तुम घर नहीं आओगे, मैं तुम्हारे घर से नहीं जाऊँगी।" लक्ष्मी-जी बोलीं।

यह कहकर लक्ष्मीजी, उसी के बताए हुए पते-ठिकाने पर जा पहुँचीं।

इधर, राम गोपाल ने सोचा, अगर मैं जल्दी घर पहुँच जाता हूँ तो लक्ष्मीजी वहाँ से चल देंगी। फिर हमारा सारा खानदान, हमेशा गरीबी से ही जूझता रहेगा। लेकिन वह लक्ष्मीजी को स्थायी रूप से अपने ही घर रखना चाहता था। इसलिए उसने निर्णय ले लिया कि वह गंडक नदी में कूद मरेगा। जब वह घर नहीं जाएगा तो लक्ष्मीजी सदा उसी के यहाँ रहेंगी। उसकी इस आत्महत्या के पीछे यही राज था। अगर वह स्वयं लक्ष्मीजी का उपयोग नहीं कर पाया तो उसके परिवार वाले तो करेंगे ही। तब उसका परिवार कभी भी दरिद्र तो नहीं रहेगा?

तभी राजलक्ष्मी उसकी पत्नी उसे जगाने लगी। उसने पूछा, "क्या बात है जी? सूरज सिर पर चढ़ आया है और तुम लंबी तान ताने हुए हो?"

राम गोपाल जब जागा तो उसे सारी स्थिति बदली-बदली लगने लगी। वह लक्ष्मीजी के बारे में सोचने लगा। तब उसने मन-ही-मन भगवान से निवेदन किया, "हे भगवान! मेरे पास कुछ दिन के लिए लक्ष्मीजी को भेज दो।" फिर वह जल्दी-जल्दी मंदिर चल दिया। लेकिन मंदिर में दस साल तक पंडिताई करने पर

भी, उसे कुछ नहीं मिल पाया। तब उसने उसे छोड़ देने का निर्णय ले लिया। अब वह दूसरी तरह से सोचने लगा, "आजकल मजदूरों को अच्छा पैसा मिला करता है। फिर उसे जमीन खोदते समय धरती के नीचे, कोई खजाना ही मिल जाए तो उसका सारा जीवन ही सुंदर बन जाएगा। कौन जाने धरती के नीचे उसे स्वर्ण मुद्राएँ ही मिल जाएँ? उसका तो कल्याण ही हो जाएगा। यों भी मजदूरों को सत्तर-अस्सी रुपये दैनिक मजदूरी मिल जाया करती है! हाँ, उस काम में परिश्रम तो करना ही होता है। लेकिन वहाँ स्वर्णमुद्रा मिलने की संभावना भी तो है? इसलिए सारे धंधे छोड़कर उसने मजदूरी करने का मन बना लिया।

अब राम गोपाल रोज ही कुआँ खोदता और रोज ही पानी पीता। एक दिन कोई आदमी उसे बुलाकर अपने साथ ले गया। वहाँ दूसरे भी मजदूर थे। वे सभी मकान बनाने में लगे हुए थे। तभी उसे जमीन खोदते-खोदते नीचे एक सोने का ढेला मिल गया। उसे उठाकर वह, उसे उलट-पुलटकर देखने लगा। वह सोचने लगा कि अब उसकी सारी गरीबी दूर हो जाएगी। जल्द ही उसे अमीरी के दिन देखने को मिलेंगे। तभी वहाँ मालिक ने आकर पूछा, "ये क्या है रे?"

जिससे राम गोपाल के हाथ से वह ढेला छूटकर नीचे गिरा और नाली में चला गया। फिर, मालिक ने उसकी बहुत खोज की। लेकिन वह मिला नहीं। नाली में वह न जाने किधर चला गया था! उसके हाथ में लक्ष्मी आती-आती रह गई! मालिक भी तो उसका दावेदार बन रहा था। लेकिन वह लक्ष्मी किसी की भी नहीं हुई। वह सब को धता बता गई!

एक बार राम गोपाल के पड़ोसी, अमृत बाबू ने एक जमीन खरीदी। उन्होंने जब अपने मकान की नींव रखी तो वहाँ किसी औरत का कंकाल पड़ा था। कंकाल जेवरों से भरा था। कहा जाता है कि वह मुगल काल की कोई औरत थी। शायद उन दिनों यही रस्म रही होगी कि औरत को जेवर सहित दफना दिया जाता था! इसमें भी वह धन पाते-पाते रह गया। इस बात पर रात को वह बहुत समय तक सोचता रहा। अगर वे सारे जेवर उसे मिल जाते तो उसका रोज का कुआँ खोदने के काम बन्द हो जाता।

भोला बाबू उस गाँव के प्रतिष्ठित जमींदार थे। उनके पास मकान जायदाद बहुत थी। जिसमें से एक पुराने मकान का सदुपयोग न होने के कारण, उसे उन्होंने किसी तेली को रहने के लिए दे दिया था। बाद में उन्होंने उसे उसी के हाथ दस हजार रुपयों में बेच दिया। तब एक दिन उस आदमी ने, वह मकान नये सिरे से बनवाना शुरू कर दिया! राम गोपाल भी उसकी नींव खोद रहा था। दो-तीन दिन जमीन खोदने के बाद सहसा ही एक दिन उसकी कुदाल से टन्-टन् की आवाजें आने लगीं। तब मालिक के कान खड़े हो गए। फिर उसने सारे

मजदूरों की छुट्टी करके, मात्र राम गोपाल को ही वहाँ रखा। उसने कुछ रुपयों का लालच उसे दे दिया था। तब जमीन की और खुदाई करवाई गई। वहाँ खाना बनाने वाला ताँबे का कड़ाह तथा स्वर्णमुद्रा से भरा हुआ एक गगरा मिला। तब वह गरीब तेली बहुत बड़ी संपत्ति का मालिक बन बैठा। बाद में राम गोपाल को उसने थोड़े से रुपये देकर यों ही टरका दिया। उसने भी सोचा कि वह संपत्ति तो उसकी नहीं थी। इसलिए उससे लड़ाई क्यों मोल ले! फिर जब उसके नसीब में धन था ही नहीं तो वह उसे कैसे मिल पाता?

पिछले वर्ष राम गोपाल के गाँव में अंकाल पड़ गया। जिससे बेरोजगारी और महामारी की बीमारी, चारों ओर फैल गई। उन दिनों उसकी मजदूरी पर भी आफत आ गई थी। इसलिए कई दिन तो उसे अपने परिवार के साथ भूखा ही रहना पड़ा था। अंत में वह अपना गाँव छोड़कर कलकत्ता चल दिया। उस समय इधर के लोग हजारों की संख्या में पलायन कर रहे थे। वहाँ वह काम की तलाश में खूब इधर-उधर घूमा, पर उसे कहीं भी काम नहीं मिल पाया। इस समय तक उसके पास जो भी रुपये थे, वे सभी खत्म होते जा रहे थे। जिससे वहाँ भी उसे रोटी के लाले पड़ने लगे।

बहुत भागदौड़ के बाद एक दिन राम गोपाल को, एक जूट मिल में नौकरी मिल गई। वहाँ रहने के लिए उसे मालिक का एक पुराना खपरैल का मकान मिल गया। राम गोपाल उसी में रहने लगा। कुछ दिनों बाद उसकी पत्नी को जोर का दर्द हुआ।

वह 'लेबर पेन' था। उस पीड़ा से वह रोने लगी। राम गोपाल दौड़ा-दौड़ा मालिक के पास जा पहुँचा। सारी बातें बतला कर, उसने एक महीने का एडवांस माँगना चाहा। लेकिन उसने दिया नहीं। तब वह निराश होकर, अपनी उसी झोंपड़ी में लौट आया। उसने फिर किसी दाई से, पत्नी का प्रसव करवाया।

राम गोपाल को पुत्ररत्न प्राप्त हुआ था। उस समय चारों ओर खून और गंदगी फैल गई थी। इसलिए उसे रखने के लिए वह एक गड्ढा खोदने लगा। खोदते-खोदते उसकी कुदाल एक पत्थर से जा टकराई। उसे हटाने के बाद उसने देखा कि उस पत्थर के नीचे एक बहुत बड़ी खूबसूरत संदूक दबी पड़ी है। उसने उसे खोल लिया। उसमें काफी रुपया-पैसा भरा पड़ा था। इससे वह बहुत खुश हो गया। अगले दिन वह अपनी झोंपड़ी का किराया देने मालिक के पास जा पहुँचा। तब मालिक ने उससे पूछा, "अरे राम गोपाल! तेरे पास पैसा नहीं था। आज क्या बात हो गई है जो झोंपड़ी का किराया देने आ पहुँचा? आखिर इतना पैसा तेरे पास कहाँ से आया?"

"ऐसे ही एक आदमी से उधार माँगा है।" उसने कहा।

"देख राम गोपाल! मुझसे झूठ न बोल। सही-सही बतला दे।"

तब राम गोपाल ने उन्हें सारी बातें खुलकर बतला दीं। यह सुनकर मालिक ने कहा, "तब तो वह सारा पैसा मेरा हुआ। क्यों?"

"लेकिन...?"

मालिक ने उससे वह सारा रुपया-पैसा ले लिया। वह मन-मसोसकर रह गया। लेकिन हितैषियों ने राम गोपाल की ओर से मालिक पर केस ठोक दिया। उसमें जज ने यह निर्णय दिया, "वह धन राम गोपाल के बच्चे का है। क्योंकि राम गोपाल का बच्चा ही इस सेठ का पिता है। तभी तो इस संदूक में उसने लिखा था, 'हम जिस दिन आ जाएँ, उस दिन तुम्हें यह झोंपड़ी छोड़ देनी होगी।' और अब राम गोपाल का बेटा आ गया है। इसलिए सेठ बदरीप्रसाद, तुम्हें यह सारा धन, राम गोपाल को देना होगा!" इस प्रकार वह सारा धन राम गोपाल को पुनः वापस मिल गया।

राम गोपाल के जीवन में कई अवसर धन के आते-आते छिटक गए थे। लेकिन आज उसे वह धन मिल ही गया। आज जब उसे यह धन मिला तो वह उसकी कद्र करना भी सीख गया था। जिस प्रकार सोना आग में तपकर कुंदन बना करता है, उसी प्रकार राम गोपाल भी गरीबी में तपकर कुंदन बन चुका था। इसलिए उसे आज धनवान होने पर तनिक भी घमंड नहीं है। आज उसका परिवार, समाज का एक प्रतिष्ठित परिवार माना जाता है। आज वह यह भी समझने लगा है कि दुनिया में धन का बहुत महत्त्व है। क्योंकि कल जब उसके पास धन नहीं था, उसके दूर-दूर के कोई रिश्तेदार भी उसे अपना नहीं कहते थे। लेकिन आज अनेक लोग गर्व से उसे अपना रिश्तेदार कहा करते हैं। हर कोई उसके रिश्ते से बँधने के लिए तरसा करता है। अब उसके अनेक रिश्तेदार निकल आए हैं।

कोई कहता है, हम बाबू राम गोपाल के खास फुफेरे भाई हैं। कोई कहता है कि हम उनके खास ममेरे भाई हैं। कुछ लोग तो यहाँ तक कहने लगे हैं कि अगर वे उनसे कलकत्ता जाने को न कहते तो वे आज इतने धनवान न हो पाते!

राम गोपाल भी जमाने के रंग-ढंग को अच्छी तरह से पहचानने लगा था। फिर भी, वह अपने स्वभाव के विरोध में कुछ भी नहीं सोच पाता। वह इन दिनों सोचने लगा है, "जाने भी दो यारो! कम-से-कम ये आज नाना-नानी, दादा-दादी, मामा-मामी, ममेरे-फुफेरे भाई जो बन गए हैं, इन्हें हमारे द्वार से दो रोटियाँ तो मिल रही हैं। अगर किसी की भूख हमारे द्वारा शांत होती है तो उसका क्या जाता है!" फिर वह यह सोचकर निश्चिंत हो जाता है कि यह धन उसका भी तो नहीं है। जिसके प्रति उसके मन में आसक्ति हो? फिर क्यों नहीं यह धन लोगों की भलाई में लगाया जाए! फिर ये सारी चीजें इसी पृथ्वी पर ही रह जाएँगी। ऐसे में इससे

क्या मोह करना! यही कारण है कि अब उसने धन-दौलत से मोह करना छोड़ दिया है। अब वह निर्विकार भाव से दूसरों की भलाई में ही अपनी भलाई समझा करता है। 'सभी सुखी रहें' के सिद्धांत के अनुसार वह आज अपना जीवन व्यतीत करने लगा है!

आलूवाले बाबू

उस दिन 'कोल्ड स्टोरेज' के उद्घाटन का समारोह था। चारों ओर गहमागहमी थी। दूर-से गाँवों, कस्बों और शहरी लोग, उस आयोजन में आए हुए थे। हालाँकि यह 'कोल्ड स्टोरेज' शहर से दूर पंद्रह-बीस किलोमीटर की दूरी पर था। लेकिन आज ऐसा लग रहा था जैसे कि शहर में ही वह जलसा हो रहा हो! फिर यह समारोह अच्छा क्यों नहीं होगा। यह समारोह प्रसिद्ध समाजसेवी और व्यापारी रंजन बाबू का जो था। इसलिए उसमें समाज के सारे प्रतिष्ठित लोग आए हुए थे। धनी, गरीब, किसान सभी वर्गों के लोग उसमें आए हुए थे। इन्होंने उस इलाके में 'कोल्ड स्टोरेज' खोलकर एक अच्छा काम किया था, इसलिए सभी रंजन बाबू को बधाई दे रहे थे।

'कोल्ड स्टोरेज' खोलने की इच्छा रंजन बाबू के मन में वर्षों से ही थी। लेकिन उन्हें इसे खोलने का मौका नहीं मिल पा रहा था। उनका वह विचार फलीभूत नहीं हो पा रहा था। फिर एक बार जो उनके प्लॉट पर काम शुरू हुआ तो उनके मन में वह योजना पूरा करने के लिए पकती रही और एक दिन बहुत भागदौड़ के बाद वे इस योजना को साकार रूप देने में सफल हो पाए! सच तो यह है कि आदमी में लगन हो तो वह सभी कुछ प्राप्त कर सकता है। ऐसे में भाग्य भी उसका साथ दिया करता है!

आरंभ में रंजन बाबू ने अपने 'कोल्ड स्टोरेज' के लिए, अपने मित्र के भाई को मैनेजर बनाकर, उसी की देखरेख में काम सौंपा था। उस समय वे अपने गाँव से सटे हुए कई गाँवों में आलू के स्टोर के लिए, किसानों के पास गए थे। बहुत सारे किसानों ने उन्हें आश्वासन दिया तो कइयों ने तुरंत ही आलू भिजवा भी दिए थे। उन दिनों रंजन बाबू को यह चिंता लगी रहती थी कि 'कोल्ड स्टोरेज' बन तो गया है। लेकिन ऐसा न हो कि इस साल वह खाली ही रह जाए। इसलिए उन्होंने ऐसी योजना बनाई कि किसानों के यहाँ से धड़ाधड़ आलू आने लगे। इस कारण उन्होंने आधी से भी अधिक सफलता प्राप्त कर ली थी। इससे उन्हें काफी संतोष मिला था।

इधर, मोहन भाई अपनी मैनेजरी से बहुत आशावान थे। उनकी मेहनत ने

भी उनका साथ दिया, नहीं तो अच्छे-अच्छे लोग नये काम से परेशान होने लगते हैं। गीता में भी तो 'कर्म' को ही प्रधानता दी गई है। इस कर्म के बल पर मनुष्य हिमालय की चोटी पर भी हँसते-हँसते चढ़ जाता है। इसके साक्षात् उदाहरण टैगोर, न्यूटन, तिलक, गांधी आदि हैं। उन्होंने कड़ी मेहनत और कठिन तपस्या से ही अपनी मंजिल हासिल की।

जब ब्याह-शादियों का मौसम आया तो किसान लोग 'कोल्ड स्टोरेज' से अपने-अपने आलू निकालने लगे थे। उनसे रुपयों की वसूली के लिए उन्हें जब कभी गाँवों में जाना पड़ता तो वहाँ देखते कि वहाँ गरीबी का साम्राज्य है। कई घरों की जवान लड़कियाँ अनब्याही ही हैं, वहाँ दहेज-दानव सुरसा की तरह से मुँह खोले हुए है। उसके कारण वे सयानी लड़कियाँ बिना ब्याही ही, माँ-बाप के घर बैठी हुई थीं। उस निर्धनता को देखकर उन्होंने कई लोगों को, उनकी बेटी की शादी के लिए एक-एक बोरी आलू उपहार स्वरूप देने लगे। ऐसा करके वे उनकी मदद करना चाहते थे। आरंभ में तो उन्होंने शौकिया तौर पर ही उनकी मदद की थी लेकिन बाद में ऐसे लोगों को आलू देना आवश्यक होने लगा। प्रतिवर्ष ही वे ऐसे लोगों को आलू दे दिया करते। इसका परिणाम यह हुआ कि वे उस क्षेत्र में 'आलूवाले बाबू' के नाम से प्रसिद्ध होने लगे। फिर तो उनकी ख्याति और भी बढ़ने लगी। वहाँ उनके पाँच वर्ष कैसे बीते, इसका उन्हें पता तक नहीं चल पाया। एक दिन उनके मित्र राजू ने उनसे कहा, "मित्र, आलू से तुम बहुत पोपुलर हो गए इसलिए इस बार तुम चुनाव लड़कर तो देखो!"

"नहीं, मित्र! मुझे तुम लोग राजनीति में क्यों धकेलना चाहते हो? आज की राजनीति कितनी गंदी हो गई है, तुम्हें मालूम है न?" वे बोल पड़े।

"नहीं, दोस्त! ऐसी बात नहीं है। आज भी इस क्षेत्र में अच्छे-से-अच्छे आदमी हैं। फिर अच्छे-बुरे आदमी तो हर जगह ही मिला करते हैं!" राजू भाई बोले।

"सो तो है। लेकिन मुझे राजनीति करनी नहीं आती। मैं कैसे राजनीति कर पाऊँगा?" उन्होंने पूछा।

"अरे मित्र! इस क्षेत्र में तुम एक बार आ जाओगे तो वातावरण तुम्हें सब कुछ सिखला देगा। पैसा तुम्हारे कदमों में होगा, फिर अपने साथ-साथ तुम सब किसी का उद्धार कर सकोगे।" राजू भाई बोल पड़े।

"मेरे भाई, मुझे हवाला, चारा कांड जैसे केसों में नहीं फँसना है। इनसे तो सोते-जागते हमारी जिन्दगी ही दूभर हो जाती है।" यह कहते-कहते मोहन भाई के माथे पर बल पड़ गए।

"अरे मित्र! आज के नेता की यही तो 'क्वालिफिकेशन' होती है। ऐसा न

करने पर वह सफल नेता नहीं कहा जाएगा। कुरूप औरत भी मेकअप करती है। पावडर आदि से तो उसकी सारी कुरूपता ढँक जाती है। इसी प्रकार नेता भी तो कुछ इसी तरह किया करते हैं। वे करते कुछ हैं और बोलते कुछ हैं।" राजू भाई तर्क देकर बोल पड़ा।

"लेकिन राजू भाई, ये सी.बी.आई., पत्रकार तो नेताओं के आस-पास लगे ही रहते हैं। मैं इनका सामना कैसे कर पाऊँगा? यह मेरी समझ में नहीं आता!"

'भैये! मैंने कहा न कि यह सब एक सफल नेता का शृंगार है। आप जब एक अच्छे और चर्चित नेता बन जाएँगे तो ये लोग तो आएँगे ही। इनकी चिंता आप क्यों करते हैं?' राजू भाई बोले।

"देखो राजू भाई! मैं राजनीति के गूढ़ मंत्र नहीं जानता। इसलिए मैं चुनाव नहीं लड़ पाऊँगा।"

"गूढ़ मंत्र वाली ऐसी कोई बात नहीं है। तुम क्या जानना चाहते हो?"

"राजनीति की तो मैं ए.बी.सी.डी. भी नहीं जानता। इसलिए तो कह रहा हूँ कि मुझे मेरे ही हाल पर रहने दो!"

"देखो मित्र! तुम चुनाव जरूर लड़ो। तुम्हारे साथ हम जो हैं!" राजू भाई ने छाती ठोंककर कहा।

"लेकिन...!"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। 'जनक्रांति' पार्टी का टिकट मिल रहा है। जैसे भी हो, यह टिकट तुम ले लो। वैसे इस पार्टी की हवा भी चल रही है। कौन जाने इसी की सरकार बन जाए?"

"चांस तो इसी का बन रहा है, आप तो टिकट ले ही लीजिए।" दूसरे मित्र ने भी अपनी सहमति दी।

"ठीक है, जब तुम कह रहे हो तो मैं इस चुनाव में लड़ने को तैयार हूँ!"

"हारना-जीतना तो जीवन में लगा ही रहता है!" तभी किसी और ने कहा।

"राजू भाई, तुम्हें मालूम है। शमशेर बाबू बूढ़े हो चले हैं लेकिन चुनाव लड़ने का उनका शौक आज भी बरकरार है।" किसी और ने कहा।

"हाँ, मिनिस्ट्री में भी वे एक-दो बार जीत कर अवश्य गए थे। अब भी वे चुनाव लड़ने की इच्छा रखते हैं। उनके पेंसेस को दाद देनी होगी!" किसी और ने कहा।

"ठीक है राजू भाई! मैंने इन पाँच सालों में 'कोल्ड स्टोरेज' को चमकाकर रख दिया है। इसलिए यहाँ के ग्रामीण क्षेत्र में, आज मुझे कौन नहीं जानता!"

"तभी तो! इस चुनाव में आप जरूर जीत जाएँगे।" राजू भाई बोले। तब मोहन भाई ने मित्रों की सलाह पर चुनाव लड़ने का मन बना लिया।

दूसरे दिन मोहन भाई, गाड़ी लेकर ग्रामीण क्षेत्र में जहाँ-जहाँ भी गए, वहीं उनका भव्य स्वागत हुआ। फिर उनके मित्रों ने चुनाव प्रचार भी शुरू कर दिया। हर जगह वे 'आलूवाले बाबू' के नाम से पहचाने जा रहे थे। आलूवाले बाबू आएँगे, देश की डूबती नैया को बचाएँगे।' हर कहीं यही नारे उछल रहे थे। चुनाव आयोग से, उन्हें चुनाव चिह्न के रूप में भी 'आलू' ही मिला।

एक स्थान पर मोहन भाई ने अपना भाषण जनता के बीच इस तरह दिया, "आदरणीय माताओ, मित्रो और सज्जनो! मैं वह आदमी हूँ जिसने जिन्दगी भर आलू से ही प्रेम किया है। क्योंकि यही वह सब्जी है जो हर सब्जी के साथ खप जाती है। मैंने भी आलू के बीच ही जन्म लिया है। मुझे आलू के बीच ही जीने का मौका मिला है। इसलिए आप लोग निःसंकोच होकर मेरे चुनाव चिह्न 'आलू' पर ही ठप्पा लगाइए। मैं आप लोगों की पुकार, ऊपर पार्लियामेंट तक अवश्य पहुँचाऊँगा। सभी नेताओं को मैं अपने जैसा ही बनाऊँगा। तब हमारा देश कितनी तरक्की करेगा, इसका अंदाजा आप लगा ही सकते हैं?"

रंजन बाबू भी चाहते थे कि हमारे ही बीच का कोई आदमी, किसी ऊँची कुर्सी पर जाए। इससे उनके 'कोल्ड स्टोरेज' को भी लाभ होगा। इसलिए रंजन बाबू, मोहन भाई को हर प्रकार से मदद देते रहे, उन्हें वे प्रोत्साहित करते रहे।

चुनाव के चार ही दिन रह गए थे। शहरों, गाँवों में प्रत्येक पार्टी जोर-शोर से अपना चुनाव प्रचार कर रही थी। मोहन के पक्षधर भी, उनके चुनाव-प्रचार में लगे हुए थे।

उसके बाद कुछ लोगों ने अपने नाम वापस ले लिये। इसमें उन्हें दूसरी पार्टियों से धन-लाभ हुआ। लेकिन 'जनक्रांति' पार्टी के उम्मीदवारों ने नाम वापस नहीं लिये।

चुनाव के दिन लोगों ने अपने-अपने मत का प्रयोग किया। वर्तमान सरकार से लोग नाखुश थे। इसलिए इस चुनाव में मोहन भाई जीतकर एम.पी. बन गए।

मोहन भाई ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि एक दिन वे पार्लियामेंट में जा पहुँचेंगे। दिल्ली आने पर उनका नये-नये लोगों से संपर्क हुआ। पत्रकार उन्हें घेरे रहते। एक दिन उस पार्टी ने, मोहन भाई को ही अपना नेता चुना। फिर तो वे प्रधानमंत्री चुन लिये गए। वहाँ उन्होंने अपने साथियों और विरोधी पार्टी के नेताओं के साथ, देश की अनेक समस्याओं पर विचार-विमर्श किया। इस प्रकार वे अपने कामकाज में डूबते ही चले गये!

अचानक एक दिन मोहन भाई को अपने 'आलू' की याद हो आई। जब से वे दिल्ली आए उन्होंने अपना 'कोल्ड स्टोरेज' भुला ही दिया था। हालाँकि उसकी मैनेजरी का त्यागपत्र उन्होंने रंजन बाबू को सौंप दिया था। फिर भी उनके मन में

आलू के प्रति जो स्नेह, प्यार और ममता थी, वह अभी तक बनी हुई थी। इन दिनों वे आलू के ही बारे में सोचा करते। आलू उन्हें 'ब्रह्मास्त्र' की तरह से लगने लगा था। उन्होंने सोचा कि क्यों न 'आलू' का निर्यात किया जाए। तब उन्होंने देश का सत्तर प्रतिशत आलू विदेशों में भिजवाने के आदेश दे दिए। तीस प्रतिशत देश में ही रखने को कहा गया। जिससे आलू के बिना जनता में हाहाकार मचने लगा। विरोधी पार्टी ने इसका भरपूर लाभ उठाया। आलू की बुरी तरह से 'ब्लैक मार्केटिंग' होने लगी। जिससे उसके व्यापारी लखपति से करोड़पति होने लगे।

विरोधी पार्टी खूब हाय-तौबा मचा रही थी। परिणाम यह हुआ कि प्रधानमंत्री मोहन भाई को अपने पद से त्याग-पत्र देना पड़ा। वे संसद में अपना बहुमत नहीं जुटा पाए थे, जिससे उन्हें प्रधानमंत्री की कुर्सी छोड़नी पड़ी।

ठीक इस प्रकार की घटना, मुगल शासक जहाँगीर की एक घटना से मिलती है। कहा जाता है कि कभी पुर्तगालियों ने बादशाह जहाँगीर को चार बोरे 'आलू' भेंटस्वरूप दिए थे। जिससे खुश होकर, जहाँगीर ने उन्हें पूरा गोआ क्षेत्र ही उपहार में दे दिया था। धीरे-धीरे उन पुर्तगालियों ने आस-पास के क्षेत्रों पर भी अपना कब्जा कर लिया था। बाद में भारत के आजाद होने पर 'भारत सरकार' ने सारे गोआ राज्य को अपने अधीन कर लिया।

त्यागपत्र देते ही मोहन भाई ने उसी समय अपनी सारी सरकारी सुविधाएँ त्याग दीं। वे उस निवास स्थान से भी निकल आए। राजधानी से वे अपने घर चल दिए। अब उन्हें पूरी शान्ति मिल रही थी। उन्हें अब लग रहा था कि रंजन बाबू उन्हें फिर से बुला रहे हैं। उनके राजनीतिक साथियों ने उन्हें रोकना चाहा। पर उनके स्वाभिमान ने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया। वे वहीं चल दिए, जहाँ रंजन बाबू बेसब्री से उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

तीसरे दिन से, मोहन भाई उसी 'कोल्ड स्टोरेज' में मैनेजरी की नौकरी करने लगे। वहाँ वालों ने उनका जोरदार स्वागत किया। वैसे वहाँ के कुछ लोगों ने उन्हें फिर से राजनीति में रहने की सलाह दी। लेकिन उन्होंने किसी की भी नहीं सुनी। राजनीति कितनी गंदी होती है, इसका एहसास उन्हें हो चला था। वे राजनीति को नहीं पचा सकते थे। राजनीति के सारे खेल वे नजदीक से देख चुके थे। इसलिए उसमें जाने के लिए उन्होंने अपने कान ही पकड़ लिये। उनके इस आचार-विचार से रंजन बाबू उनके प्रति और भी आशावान होने लगे। उन पर उन्हें अगाध विश्वास होने लगा। उसके बाद मोहन भाई 'कोल्ड स्टोरेज' के काम में जुट गए। अब वे ट्रकों पर आलू के बोरों को चढ़ाते-उतारते हुए देखा करते। इससे उन्हें अपार संतोष होता!

काल का डर

अब जब भी दीपावली आती है तो सुरगंमा का दिल बैठने लगता है। वह आज भी रह-रहकर सोचने लगती है कि न जाने इस बार की दीपावली कौन-सा हादसा लेकर आएगी। क्योंकि दो साल से लगातार दीपावली में कुछ-न-कुछ हादसा उसके परिवार में हो जाता है।

वह सोचने लगती है...दो साल पूर्व, जब वह अपने देवर स्वदेश के प्रतिष्ठान में, गणेश-लक्ष्मी के पूजा के वक्त गयी थी, उस समय ठीक पूजा के एक घण्टे पहले, एक गोदरेज की आलमारी, जो रैक बनाकर उस पर रखी हुई थी, ठीक उसी स्थान पर सुरगंमा आकर बैठ गयी और पूजा की तैयारी करने लगी। तभी उसके ऊपर वह लम्बी लोहे की गोदरेज आलमारी, एकाएक कड़कड़ाती आवाज करती हुई, सुरगंमा पर गिर पड़ी। जिससे सुरगंमा के आधे पीठ में एकाएक दर्द होने लगा, फिर भी सुरगंमा अपने को सँभालते हुए स्वदेश से कहा, 'पूजा शुरू कीजिए।' वह नहीं चाहती थी कि हमारे कारण इस पूजा में कोई बाधा आए? इस रात को पूजा कर वह अपने घर लौट आयी। इस दीपावली की आधी रात में वह कहाँ जाएँगी, डॉक्टर मिलेगा कि नहीं? यह सब सोचकर वह आकर बेड पर सो गयी। हालाँकि असह्य दर्द से उसे थोड़ा भी चैन नहीं आ रहा था फिर भी उसका पति सुनील न परेशान हो जाए, इसलिए वह रात भर अपने को असह्य वेदना में कराहते हुए बेड पर लेटे रही। शायद प्रकृति ने औरत को इसीलिए बनाया ही है कि वह पीड़ा में तड़पती रहे लेकिन किसी के सामने उफ तक न करे। जबकि यही घटना उसकी बेटी के साथ होने वाली थी। यह तो खैर मनाइए कि वे दोनों वहाँ से हट गए थे ओर सुरगंमा खुद आकर वहाँ बैठ गयी थी, नहीं तो आज सुनील या क्षमा बिछावन पर छटपटाती होती! लेकिन भगवान को इतनी पीड़ा पर भी बर्दाश्त नहीं हुआ। कारण उस दिन जलता हुआ एक रॉकेट, उसके बॉलकनी में गिर पड़ा था, जिससे सुबह में पसारे हुए सारे कपड़े में आग पकड़ ली थी। तो तो संयोग ऐसा हुआ कि इनका नौकर, बॉलकनी में अचानक गया हुआ था, तभी उसने देखा कि कपड़ों में आग लगी हुई है। यह देख उसने तुरन्त अपनी मालकिन को बुलाया। लेकिन सुरगंमा जब तक आयी, तब तक, बॉलकनी का सारा कपड़ा

जल कर राख हो चुका था। यह सोचकर, इस दीपावली पर्व से, वह इतनी भयभीत हो गयी थी, जैसे लग रहा था कि यह दीपावली नहीं कोई काल उसे डसने के लिए आ गई हो! यह सोचते-सोचते, वह कराहते हुए बेड पर मात्र लेटी रही, क्योंकि इतनी पीड़ा में उसे नींद भला कैसे आ सकती थी?

दूसरे दिन उठते ही वह सुनील के साथ एक डॉक्टर के पास गयी। जहाँ डॉक्टर ने देखकर उनसे कहा, "भला ऐसी चोट कैसे इनको लग गयी है? आधी पीठ का खाल निकल गया है?"

"वही तो मैं भी कह रहा हूँ। मेरी बीवी अगर अभी पुलिस में हमारे विरोध में कह दे तो मैं तुरन्त ही 'एरेस्ट' हो जाऊँगा और न जाने कितने वर्षों तक का जेल मुझे हो जाएगा।" यह बात सुनील डॉक्टर को बड़ा सहमते-सहमते हुए कही थी!

तब उस दिन वह डॉक्टर इस सुरगंमा को पीठ से लेकर पैर तक प्लास्टर लगाया था। साल भर प्लास्टर और डॉक्टर का सिलसिला चला, तब जाकर उसे डॉक्टर से छुटकारा मिला था।

पिछले साल भी दीपावली के समय, उसका देवरं स्वदेश का भीषण एक्सीडेंट हो गया। वह रिक्शे से बाजार की ओर जा रहा था, तभी एक माल ढोने वाली 407 गाड़ी, आँधी की तरह आयी। जिससे एक्सीडेंट हो गया। स्वदेश का पूरा चेहरा शीशे में घुस चुका था। जहाँ ड्राइवर बैठता है, वहाँ उसका सर था और पैर उस गाड़ी से झूल रहा था। संयोगवश उसी समय एक पुलिस की जीप गस्त लगाती हुई कहीं जा रही थी। तभी उसने ऐसी घटना देखी थी। तब उन्होंने इस रिक्शेवाले और स्वदेश को एक किनारे सुला दिया। उस समय संयोग से इन दोनों की साँस अभी थोड़ी-थोड़ी चल रही थी, इसलिए इन लोगों को 'हिन्दू राव' हॉस्पीटल में भर्ती करा दिया गया और उनके जेब से मिले हुए 'एडरेस' पर, उनके परिवार को, इस बात की सूचना फोन से दे दी गयी। तत्पश्चात् इनके घर से सुरगंमा और इनकी बीवी रोते-धोते हॉस्पीटल में आयीं। जहाँ देखकर ये लोग स्तब्ध से हो गए थे। तब सुरगंमा ने अपने पति सुनील को 'बड़ौदा' फोन कर, इस बात की सूचना दी। समाचार मिलते ही सुनील घबरा गया और उसने तुरन्त वहाँ से चलने का प्रोग्राम बना लिया। उस दिन सुनील 'स्टेशन' आकर, गाड़ी देखा लेकिन उसे कोई भी ट्रेन नहीं मिली। तब उसने मजबूर होकर, 'बड़ौदा' से 'दिल्ली' के लिए एक बस पकड़ी, जो बस पूरे अड़तालीस घण्टे में इन्हें 'दिल्ली' लायी थी! बीच-बीच में जब-जब सुनील को सुविधा मिलती तो वहाँ-वहाँ से वह 'टेलीफोन-बूथ' से घर पर फोन कर देता, 'मैं यहाँ हूँ और इतनी देर में घर पहुँच रहा हूँ!'

सुरगंमा दरवाजे पर बैठी सुनील का इन्तजार कर रही थी। मन में रह-रहकर उसे इस समय अजीब-अजीब विचार भी उपजने लगे थे। कारण आज के पेपर में

उसने कई बस एक्सीडेंट का समाचार जो पढ़ा था। कुछ ऐसे ही भाव उसके मन में आ-जा रहे थे! तभी एकाएक घंटी बजी जिससे उनकी क्षमा बेटी आकर कहने लगी, "ममी, पापा आ गए, पापा आ गए, उठो न!" तब सुरगंमा का अचानक ध्यान टूटा था। वह हड़बड़ा कर उठी और दरवाजा खोली लेकिन दरवाजे पर तो दूधवाला आया था। तब वह अपनी बेटी को बोली, "क्षमा, जब तक तुम्हारे पापा यहाँ आ नहीं जाते, तब तक तुम मेरे पास न आना!" यह कहकर उसे डाँटते हुए खेलने के लिए कहा। क्षमा डाँट खाकर सहम गयी, क्योंकि अपनी ममी का बर्ताव ऐसा पहले वह कभी नहीं देखी थी। वह डरकर दूसरे रूम में चली गयी, जैसे उसे कुछ हो गया हो।

इन दिनों सुरगंमा प्रतिदिन खाना बनाती और अपनी बेटी क्षमा को खिलाकर, दरवाजा को टकटकी लगाकर देखने लगती। इस बीच कभी उसे आभास होता कि अब दरवाजा का 'कॉल-बेल' बज उठेगा लेकिन 'कॉल-बेल' बजना तो दूर, उसका कोई रिश्तेदार भी अभी ढाँढस बँधाने नहीं आया!

इसके पहले तो इस छोटे से घर में उसके रिश्तेदार भरे पड़े रहते थे। उस समय सुरगंमा को कोफ्त होती थी, इन रिश्तेदारों को देखकर! लेकिन आज जब उसके पति यहाँ नहीं हैं तो कोई रिश्तेदार भी यहाँ नहीं है, जिससे बोल-चाल कर, अपना समय काट सकती। दो-तीन दिन तो इसे काटे नहीं कट रही थी। वह कभी अपने सुनील को देखने गलियारे में आती और कभी रोड पर आ-जा रहे थ्री-व्हीलर को देखती, न जाने कब इन थ्री-व्हीलर में से, एक थ्री-व्हीलर इसके दरवाजे पर आकर रुक जाय? लेकिन ऐसा नहीं हुआ। तीसरे दिन काफी इन्तजार के बाद, वह बिछावन पर सोने चली गयी। आधी रात को उसके दरवाजे का 'बेल' एकाएक बज उठी। अचानक आधी रात को बेल बजने के बाद, सुरगंमा के मन में यह शंका हुई कि न जाने दरवाजे पर कौन आया है? आजकल कॉलोनी में बहुत चोरी-डकैती हो रही है, कहीं कोई उसके घर को लूटने तो नहीं आया है? इस बीच, तीन-चार बार 'कॉल-बेल' बजी। फिर भी उसके मन में विचित्र बात ही घूम रही थी। तब सुनील ने सोचा कि शायद सब लोग गहरी नींद में सो गये हों, इसलिए वह जोर-जोर से क्षमा बेटी को पुकारने लगा। जब सुरगंमा पूरी तरह से आश्वस्त हो गयी कि द्वार पर खड़ा और कोई नहीं, उसका पति सुनील ही है। तब वह आकर दरवाजा खोली। सुरगंमा सुनील को देखते ही गले से लग गयी। जैसे उसे अब जान में जान आ गयी हो!

सुनील घर आकर, सारी बात से अवगत हुआ, फिर वह रात को ही सुरगंमा के साथ चल दिया। अस्पताल आकर उसने देखा, उसका भाई स्वदेश बेड पर पड़ा हुआ है और उसकी बीवी और नौकर, उसके बेड के पास बैठकर ऊँघ रहे हैं। अचानक नौकर अपने मालिक को आते देख खड़ा हो गया था। फिर सुनील उसी

समय डॉक्टर से मिलकर अच्छा 'ट्रीटमेंट' करवाने में लग गया। तब उसे दो दिनों के बाद जनरल वार्ड से, सेपरेट रूम में ट्रांसफर करवाया और फिर उसे अच्छे ढंग से इलाज करवाने लगा। एक दिन डॉक्टर ने कहा, "इन्हें हर शाम को 'फीवर' हो जाती है, इसलिए नया प्लास्टर हम नहीं चढ़ा सकते हैं!" इस तरह दो-तीन दिन और बीत गया था। तब सुनील ने उसे दूसरे हॉस्पिटल में ट्रांसफर कराने की बात डॉक्टर से की, और जब दूसरे अस्पताल के डॉक्टर ने प्लास्टर चढ़ाने की हामी भर ली तब उसे वहाँ ले जाकर ऑपरेशन कर प्लास्टर चढ़वाया। लगभग छह महीने के बाद यह प्लास्टर कटा एवं साल भर बाद 'एक्सरसाइज' वगैरह कराने के बाद स्वदेश एक स्टिक लेकर चलने लगा। इस बीच उसे देखने के लिए उसके यहाँ रिश्तेदारों का ताँता लग गया था। चूँकि ये सारे रिश्तेदार, सुनील के यहाँ आकर ठहरे थे, इसलिए वह उन्हें भगा भी नहीं सकता था! अन्त में उसके यहाँ से धीरे-धीरे कर, सारे रिश्तेदार अपने-अपने घर लौट गए। किन्तु सुनील आज लाखों रुपये का कर्जदार बन गया था।

इस साल भी दीपावली त्यौहार आया था। दीपावली के एक-दो दिन पूर्व, खूब फटाके-फुलझड़ी छूटने लगे थे। बाजार में भीड़-भड़ाका खूब होने लगी थी। सुरगंमा भी दीपावली की तैयारी पूर्ण रूप से करने लगी थी। घर में पुचारा, पेन्ट-वगैरह होने लगा था। आज दीपावली थी, इसलिए सुरगंमा सुबह उठकर, घर में रंगोली वगैरह बनाने लगी थी। तभी सुनील अपने एक व्यापारी, जो गुड़गाँव में रहता है, के वहाँ चलने का प्रोग्राम बनाया। इनके एक व्यापारी मनीशानन्द, एक एक्सीडेंट में अपना पैर खो चुके थे लेकिन डॉक्टर ने उन्हें प्लास्टर वगैरह कर, अब बैसाखियों पर चलाने की कोशिश करा रहे थे। यह कोशिश अब अस्सी प्रतिशत सफल भी हो चुकी थी। अब मात्र बीस प्रतिशत ही, अच्छे होने में शेष बच गया था। इसलिए सुनील और सुरगंमा उन्हें देखने एवं दीपावली की शुभकामना देने, उनके घर पर जा रहे थे। वहाँ पहुँचकर उन्हें ढाँढस और अपना स्नेह भरी बात कही। जिससे मनीशानन्द आनन्द विभोर हो गए। यहाँ इन दोनों को देख, इनका सारा परिवार भी खुश हो गया था।

करीब एक घंटा के बाद, ये लोग लौट पड़े। रास्ते में हँसते-गाते ये लोग लौट ही रहे थे, तभी किसी स्कूटर वाले ने एकाएक कहा, "आपके गाड़ी का दरवाजा खुला हुआ है!" यह सुनकर सुरगंमा चौंक गयी, उसे लगा कि इस दीपावली में भी कोई दुर्घटना होने वाली थी, जो बच गयी! क्योंकि संयोगवश उनकी बेटी क्षमा, उसी खुले हुए दरवाजे के पास बैठी हुई थी। यह देखकर सुरगंमा मन-ही-मन अपने परिवार को सुरक्षित बनाए रखने के लिए अपने भगवान से प्रार्थना करने लगी!

भूखे लोग

आज भारत में एक अरब की जनसंख्या में से मात्र दस प्रतिशत ही अपना ठीक से भरण-पोषण कर पाते हैं। ऐसे में भी हमारे देश की सरकार यही कहती फिरती है, "आज हमारा देश बहुत तरक्की कर चुका है। यहाँ की जनता अपनी गरीबी की रेखा से ऊँची उठ चुकी है।" लेकिन वास्तविकता क्या है, यह किसी से छिपा नहीं है। आज सारा सरकारी तंत्र, अपने काम के बदले केवल 'बॉस' की चमचागिरी में ही लगा हुआ है। उसमें उसके बॉस, चेयरमैन, जनरल मैनेजर और अन्य अधिकारी हुआ करते हैं। (क्षमा करें, अपवाद को छोड़कर।) अधिकारी लोग अपने एयर कंडीशन कमरों में बैठकर अपने चमचों से बातें सुना करते हैं। वहीं बैठे हुए वे 'गरीबी उन्मूलन' के लिए, अनेक प्रकार की योजनाएँ बनाया करते हैं।

उन योजनाओं की धनराशि साइट पर जाकर आधी से भी अधिक पहले नेताओं, फिर अधिकारियों और उसके बाद ठेकेदारों की जेबों में चली जाती है। ऐसे में गरीबी उन्मूलन का खाका केवल कागजों पर ही अंकित होकर रह जाता है। जिस देश का बचपन भूखा होगा, उसकी जवानी कैसी होगी? ऐसी दशा में नब्बे प्रतिशत भारत की जनता, जिसे दो जून की रोटी नहीं मिलती, भूख से जिसकी आँतें कुलबुलाती रहती हैं—उसका शरीर भूख से कंकाल हो जाता है! तब क्या देश की प्रगति होगी और क्या उसका सुन्दर भविष्य होगा? नेताओं द्वारा बढ़ाई गई महँगाई, ऐसे कंकाल कैसे सह पाएँगे? वे तो चरमरा कर दम ही तोड़ देंगे! यहाँ आदमी तिल-तिल कर मर रहा है। बची हुई साँस भी न जाने कब दम तोड़ देगी!

देश की आज यह हालत है कि भूखे लोग जहाँ भी अन्न मिले, वहीं टूट पड़ते हैं। वे पेट की आग बुझाने के लिए नीच से नीच कृत्य कर डालते हैं। कहीं कोई 'रिसिप्शन पार्टी' हो अथवा किसी की 'बर्थ डे पार्टी'! मृत्यु भोज का अवसर हो अथवा कोई दूसरा समारोह! ये भूखे लोग तो जूठी पत्तलें चाटते ही हैं। अन्य आमंत्रित लोग भी सपरिवार पधार कर, दावत देने वाले का कबाड़ा ही कर डालते हैं। वे सारे परिजनों को अपने साथ लेकर आया करते हैं। ऐसे में पार्टी देने वाले का कोई वश नहीं चल पाता। निमंत्रण देने वाला व्यक्ति उन्हें अपने द्वार से धक्का

भी तो नहीं दे सकता। कारण यही होता है कि उसकी समाज में बदनामी हो जाएगी। निमंत्रित व्यक्ति भी तो वहाँ पूरा मेहमान बनकर ही आया करते हैं। वे वहाँ ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे कि वे उस घर के दामाद ही हों!

अब उसी दिन की बात ले लीजिए न! रमेश अपने मित्र के बेटे की शादी की 'रिसेप्शन पार्टी' में गया था। वहाँ की दशा देखकर उसे महान् आश्चर्य हुआ था। वह वहाँ अकेला ही गया था। जबकि दूसरे लोग अपने सभी परिजनों के साथ वहाँ पधारे हुए थे। वे लोग वहाँ तीन-चार सौ रुपये का सामान चट कर गए थे। बदले में उन्हें ग्यारह, इक्कीस रुपये के लिफाफे ही थमाकर चलते बने थे। वह सोचने लगा था, 'अरे भाई इतनी महँगाई में, किसी के यहाँ जाना वह भी पूरे परिवार के साथ, कहाँ तक न्यायसंगत है! सच में आज के लोग भोजन जीमने के चक्कर में अपना मान-सम्मान तक खो बैठते हैं।'

पड़ोसी महेश किसी की शादी में गया हुआ था। वहाँ बारात आने में देर थी। लड़की वाला आमंत्रित लोगों को नाश्ता करवा रहा था। उसने सोचा था कि लोग ऐसे ही न लौट जाएँ! इसलिए वह उन्हें जलपान करवाने लगा। लेकिन ये क्या! वहाँ तो कुछ परिवार निर्लज्ज होकर नाश्ते पर टूटने लगे थे। वे ऐसे खा-पी रहे थे, जैसे कि वह उन्हीं का घर हो! रात के एक बजे जब बारात द्वार पर आई तो वे आमंत्रित लोग, बारातियों के साथ फिर से भोजन जीमने लगे थे। वहाँ से वे भरपेट खा-पीकर ही अपने घरों को लौटे थे। बीच-बीच में वे कहते, "अहा! अभिमन्यु बाबू की बेटी की शादी है। क्या मैं बिना बारात आए ही लौट जाऊँ?" ऐसा कहकर जैसे वे लोग लड़की के बाप पर बहुत अहसान कर रहे हों!

उस दिन लेखक के मित्र श्री बाबू के बेटे की शादी की 'रिसेप्शन पार्टी' थी। शादी के उपलक्ष्य में उन्होंने शानदार पार्टी का आयोजन किया था। वहाँ कुछ लोग, इस लेखक के परिचित भी मिल गए थे। वे उससे हालचाल पूछने लगे थे। उसके बाद वे लोग पूछने लगे, "अरे भई, यहाँ खाने-पीने की व्यवस्था किधर है?"

"ऊपर जेंट्स का है और नीचे लेड़ीज का।" लेखक ने बताया था।

"अच्छा!" यह कहकर वे लोग ऊपर जाकर भोजन पर टूट पड़े थे। बाद में वे लोग वर-वधू को कुछ दिए बगैर ही अपने-अपने घर चले गए थे। लेखक यह देखकर मन-ही-मन सोचने लगा था, "आखिर ये लोग भी कैसे आदमी हैं। बिना कुछ दिए ही चलते बने! लगता है, ये भूखे लोग यहाँ केवल खाने के लिए ही आए थे।"

उस दिन किसी स्थानीय पार्टी ने, शहर में एक मीटिंग बुलवाई थी। मीटिंग को सुबह के दस बजे से, रात के आठ बजे तक चलना था। उसके आयोजकों ने सोचा, सुबह के दस बजे से रात के आठ बजे तक का लंबा समय हो जाएगा।

इसलिए क्यों नहीं दोपहर को एक बजे लंच दे दिया जाए! इससे मीटिंग सुचारु रूप से चलती रहेगी। जब यह घोषणा हुई तो वहाँ के लोग, लंच के बाद अपने घरों को खिसकने लगे। उस समय वहाँ केवल अध्यक्ष एवं आयोजकों के सिवाय वह आदमी रह गया था जिसे शामियाने का सामान उठाकर ले जाना था। तब अध्यक्ष महोदय और आयोजकों ने उस मीटिंग की समाप्ति की घोषणा की।

इन दिनों गाँवों के भोजों में भी, यही सब देखने को मिलता है। गाँववालों को, अपने पड़ोसी गाँवों के लोगों को भी, भोज में बुलाना पड़ता है। यदि किसी एक को न्योता न दिया जाए तो उसकी जोर-शोर से चर्चाएँ होने लगती हैं। ऐसे में तो कभी-कभी भोज देने वाले को अपनी जाति और समाज से भी निकाल दिया जाता है।

लेखक को इस प्रकार की घटनाएँ गाँवों में देखने को मिली हैं। गाँवों के भोज में खाने वालों की दशा देखकर, वह दाँतों तले अँगुली दबाने लगा था।

उस दिन एक गाँव के भोज में कुछ ब्राह्मण भोजन की पंगत में बैठे हुए थे। कुछ तो ऐसे थे जो दो से पाँच किलो तक दही-चीनी और मिठाई चट कर चुके थे। फिर भी, वे वहीं डटे हुए थे। ऐसे में भी वे लोग और माँग रहे थे। लेकिन खिलाने वाला 'और भी देने से' कतरा रहा था। कारण यह था कि उसे डर था कि इन लोगों को कुछ हो जाए तो और मुसीबत खड़ी होगी। इसीलिए वह और अधिक परसन नहीं देना चाहता था। फिर भी निमंत्रित ब्राह्मण थोड़ा-थोड़ा माँगते ही जा रहे थे। अंत में परोसने वाले आदमी ने, उनकी पत्तलों पर परसन रख ही दिया। फिर जैसा कि परोसने वाला सोच रहा था, वैसा ही हुआ।

उन ब्राह्मणों ने खाने को तो खा लिया। पर वे उसे पचा नहीं पा रहे थे। उनकी बहुत ही दुर्दशा हुई। यह देखकर लेखक हैरान हो गया था। एक ब्राह्मण जब खा चुका तो, उससे अपने आप नहीं उठा जा रहा था। जिसे दोनों तरफ से, दो आदमियों ने अपने कंधों का सहारा देकर उठाया था। तभी वह अपने घर पहुँचा था। उसे एक राह चलते आदमी ने टोक दिया, "ऐसा भोजन भी किस काम का, जब आदमी अपने पाँव से न चल सके!" यह सुनकर वह ब्राह्मण गुस्सा होकर बोला, "बबुआ, हम की खायम, हम तो कुछो न खैली ह! उ देखा, जो खटिया पर जा रहल ह, ओकर बोलतऽ तो थोड़ा अच्छा लागीत।" सचमुच उस समय एक आदमी भोजन कर खटिया पर सोकर जा रहा था। उससे भोजन करने के बाद थोड़ा भी नहीं चला जा रहा था। उसे देखकर सभी को आश्चर्य हुआ था। फिर उन्हें भी लोग टोकने से बाज नहीं आए थे। तब उस आदमी ने कहा, "भाई साहेब! मुझे क्यों टोक रहे हो! हम तो कुछ भी नहीं खाए हैं। जो खाते-खाते शमशान घाट पहुँच गया है, उसे तो आप कुछ नहीं बोल रहे हैं। हमें ही क्यों बोल रहे हैं!"

सचमुच लोग एक अर्थी को कंधा देते हुए 'राम नाम सत्य है!' बोलते हुए श्मशान घाट की ओर चले जा रहे थे। यह देखकर लोग बहुत आश्चर्यचकित हो गए थे।

वर्माजी के मकान मालिक के यहाँ, उनके पिताजी का श्राद्ध का भोजन था। उसमें पैंतालीस साल का एक आदमी, बार-बार उस स्वर्गवासी आत्मा की तस्वीर को प्रणाम करता जा रहा था। चूँकि उसके पिताश्री, किसी समय केंद्रीय मंत्री रहे थे। उन्हें सभी जानते थे। जिसका परिणाम यह हुआ कि प्रणाम करने वाला वह आदमी, कोई कामधाम नहीं करता था। और वह डेली इस बात का पता करता रहता है कि आज किसके यहाँ, किस प्रकार का भोज है। अब उसकी यही दिनचर्या बन गयी थी। चूँकि यह शहर छोटा है। यहाँ सभी एक-दूसरे को जानते हैं। अतः उस आदमी को, मृतात्मा को प्रणाम करते देख, वे सभी चुप रहते हैं। फिर भोज देने वाला भी सोचता है जहाँ भोज में इतने आदमियों ने खाया, वहाँ आठ-दस से क्या फर्क पड़ता है?

एक बार सुभाष बाबू अपने ऑफिस में व्यापारियों से उलझ रहे थे। तभी उनके पास उनका परिचित मित्र का भाई विजयानंद चला आया। उसने कहा, "भैया, एक पुर्जा दीजिए। हम नाश्ता करेंगे।"

"ठीक है। तुम कैंटीन में जाकर नाश्ता करो। पुर्जा वही ले जाएगा।"

"ठीक है, भैया।" यह कहकर विजयानंद कैंटीन की ओर चल दिया। वहाँ उसने भरपेट नाश्ता किया। उसके बाद कैंटीन वाला, उनके पास पुर्जा लेकर आया।

"हाँ, बोलो! कितना हुआ?" सुभाष बाबू ने उससे पूछा।

"जी, सत्तर रुपये।"

"क्या? सत्तर रुपये का कहीं नाश्ता होता है?"

"आप ही ने तो विजयानंद जी को कैंटीन में भेजा था।"

"हाँ, भेजा तो था। लेकिन...।"

"जी, उन्होंने सत्तर मिठाई खाई हैं।"

यह सुनकर सुभाष बाबू ने अपना माथा ही पकड़ लिया। फिर उस दिन से वे 'नाश्ता कर लो!' कहना ही भूल गए। लेखक बाहर के बड़े शहरों में भी आमंत्रित होता रहता है। वहाँ उसने देखा है कि कई लोग, वहाँ आयोजित समारोहों में बेहिचक चले आते हैं। आयोजकों से उनका कोई भी लेना-देना नहीं होता। फिर मजे से खा-पीकर वे लोग फुटक जाते हैं। कोई उन पर शक तक नहीं करता। उन्हें कोई रोकने-टोकने वाला भी तो नहीं होता उस समय लड़की वाला सोचता है कि वे लोग लड़के वालों के होंगे। इसी प्रकार लड़के वाले भी सोचते हैं

कि वे लड़कीवालों के होंगे। इस चक्कर में वे लाग खाते-पीते रहते हैं।

उस दिन तो मजा ही आ गया। हुआ यह कि एक सरदारजी एक होटल में बड़े गर्मजोशी से लोगों को ललकार रहे थे, "हमसे खाने में जो बाजी मार लेगा उसे पाँच सौ एक रुपये बतौर इनाम के दिए जाएँगे। खाने का सारा बिल भी हम ही देंगे। नहीं तो पाँच सौ एक रुपया खाने वाले को देने होंगे।"

उस समय होटल में बैठा हुआ एक नाटा-सा दिखने वाला आदमी, अपनी मूँछों पर ताव देने लगा। वह उस प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार हो गया। तब उन दोनों के लिए थाली लगाई गई। दोनों ने हाथ मिलाया और भोजन करने लगे। दोनों एक-एक रोटी खाने लगे। पचपन, सतावन पर सरदारजी रुक गए। लेकिन वह नाटा आदमी साठ रोटियाँ खाकर, उस बाजी को जीत गया। इस बीच वे दोनों तीन-तीन बार बॉथरूम भी गए। फिर वायदे के अनुसार सरदारजी को, उसे खाने के बिल के अलावा, पाँच सौ एक रुपये भी देने पड़े थे। जीते हुए उस नाटे आदमी ने एक सप्ताह तक कुछ भी नहीं खाया!

आज के वातावरण को देखकर लेखक यही सोचता है, "सच में हमारे देश के लोग भूखे हैं। यहाँ के लोगों को खाने को नहीं मिलता। अगर यही हाल रहा तो इस देश का क्या हाल होगा? देश की सच्चाई सभी के सामने उभरकर आ गई है। इसे कौन झुठला सकता है? फिर इधर-उधर हाथ में कटोरियाँ लिये हुए भिखमंगों को देखकर, कौन नहीं कहेगा कि यह देश भुक्खड़ है! यहाँ के नेता, अधिकारी अपना पेट भरकर, जनता का हक छीन रहे हैं। तभी तो यहाँ हवाला, चुरहट, पशु चारा आदि कांड होते आ रहे हैं।

गधे-ही-गधे

गधा एक ऐसा उपयोगी पालतू जानवर है कि पूछिए मत! उसकी पीठ पर आप कितना ही बोझ डाल दीजिए, वह 'उफ!' तक नहीं करेगा। वह पूरी शक्ति के साथ आपका बोझा ढोता रहेगा। फिर किसी को यदि मूर्ख बनाना हो तो उसे आप 'गधे' की उपमा दे दीजिए। उसे 'गधा' कहकर संबोधित कर दीजिए। समझने वाला समझ जाएगा कि कितना तीखा व्यंग्य किया गया है। उसके बाद दूसरे लोग भी गाली के रूप में, दिमाग में भेजा (बुद्धि) न होने पर, उसे आसानी से 'गधे' की उपमा दे देते हैं। यही नहीं, ऑफिसों में यदि कोई अधिकारी अपने अधीनस्थ के ऊपर ढेर सारा काम थोप देता है, तब वह उस काम में गधे की तरह ही लगा रहता है। वह पिसता ही रहता है!

सच कहिए तो गधा ऐसा अजीब जानवर होता है, जिस बेचारे का अपना कोई 'फॉर्म हाउस' भी नहीं होता। यह तो आपने सुना ही होगा कि हमारे यहाँ 'मुर्गी फॉर्म' (पोल्ट्री फॉर्म), गाय फॉर्म (गौशाला), भैंस फॉर्म (खटाल), चिड़िया फॉर्म (चिड़िया घर), हिरण फॉर्म (डियर फॉर्म) आदि हुआ करते हैं। लेकिन आपने कभी 'गधा फॉर्म' नहीं सुना होगा। आप ही सोचिए कि यह कितनी अजीब बात है!

इसके अतिरिक्त कोई आदमी यदि अपने जीवन में कभी 'गधा' न बना हो तो चालीस वर्ष के बाद परिस्थितियाँ उसे स्वयं ही 'गधा' बना देती हैं। आप पूछेंगे कैसे? तो साहब, चालीस वर्ष बाद वह अपनी बीवी और अपने बच्चों का कर्जदार हो जाता है। अर्थात् बेटा-बेटियों को पढ़ाना, परिवार के लिए घर बनाना आदि अनेक कामों से वह लद ही जाया करता है। आज बच्चे को सर्दी लग गई है, कल बीवी को ज्वर हो आया है। बेटी सयानी हो आई है। उसका ब्याह करना है। आज आटा समाप्त हो गया है। कहने का मतलब यही है कि सारा-का-सारा बोझ, उसी आदमी को ढोना पड़ता है। फिर वह आदमी सबकी परवरिश करता हुआ, जिम्मेदारीपूर्वक घर की गाड़ी को खींचता रहता है। ऐसे में उसे कितनी ही परेशानी क्यों न हो, उसे करने ही होते हैं। सारा गम उसी को पीना होता है। जैसे धोबी अपने गधे की पीठ पर बोझा रखकर अपनी मंजिल की ओर जाता है, ठीक उसी प्रकार, गृहस्थ आदमी भी, पारिवारिक बोझ ढोता रहता है। सारे दुख-दर्द उसी को झेलने होते हैं। उस समय

उसे कोई यह कहने वाला भी नहीं होता कि 'मेरे भाई, आ, तेरा दुख-दर्द हम बाँट लें। तेरे घाव पर मरहम लगा दें। तुम्हारा बोझ हम हल्का कर दें।" इस बीच उस आदमी की पत्नी यदि सहयोगिनी की तरह से पेश आई, तब तो ठीक है। नहीं तो उस पर क्या बीतती है, इसे ऊपर वाला ही जानता है!

आजकल कुछ उल्टा हो गया है। आप किसी भी कार्यालय में चले जाइए। वहाँ भी आपको अनेक प्रकार के गधे दिखाई देंगे। वहाँ जो अधिकारी अथवा ऊँचे पद पर होता है, वह भी तो गधा ही हुआ करता है। (माफ कीजिएगा आपसे नहीं कहा जा रहा है।) वह बेचारा गधा कैसे बनता है, यह भी जान लीजिए। कार्यालय या फर्म में या कंपनी में सारी जवाबदेही अधिकारी की ही होती है। वहाँ जन-संपर्क का कार्य हुआ करता है। वहाँ काम न बनने पर लोग अधिकारी को ही पकड़ते हैं। बैंक में तो वहाँ का मैनेजर पूरी तरह से गधा ही होता है। कर्मचारियों का अच्छा व्यवहार न होने पर उसे ही पकड़ा जाता है!

आपने देखा ही होगा कि सरकारी कार्यालयों में या किसी बैंक में कर्मचारियों का अधिकारी के प्रति क्या रवैया होता है। उस बेचारे में अधिकार तो होता है किंतु वह उस अधिकार का प्रयोग अपने अधीनस्थों पर नहीं कर सकता। वह अपने स्टॉफ के विरुद्ध कोई भी अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं कर सकता। वहाँ का स्टॉक आराम करता है जबकि अधिकारी को गधे की तरह से पिसना होता है। कोई हँस रहा है, कहीं गप्पबाजी हो रही है, कोई अपनी सीट से नदारद है। दसेक मिनट के काम के लिए भी वे घंटों लगा दिया करते हैं। यदि आपने किसी स्टॉफ के विरुद्ध, कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही की तो 'यूनियन' वाले आपका जीना ही हराम कर देते हैं। यदि वहाँ के स्टॉफ को, अधिकारी के प्रति सहानुभूति है तो वह तुरंत ही काम कर देगा। नहीं तो वह काम को लटकाए ही रखेगा। तब विवश होकर अधिकारी को ही काम करना पड़ेगा!

एक दिन किसी बैंक मैनेजर ने वहाँ के कर्मचारी से कहा, "इनका 'ड्राफ्ट बना दें।" उस कर्मचारी ने पूछा, "आप रिक्वेस्ट कर रहे हैं या ऑर्डर दे रहे हैं? यदि आप ऑर्डर दे रहे हैं तो यह ड्राफ्ट नहीं बनेगा और यदि आप रिक्वेस्ट कर रहे हैं तो ड्राफ्ट अभी हम बना देते हैं।" तब वहाँ के मैनेजर ने शांत स्वर में कहा, "नहीं भाई, आपको हम ऑर्डर क्यों देंगे? हम तो इस काम के लिए आपसे रिक्वेस्ट ही कर सकते हैं?" तब कर्मचारी में गजब की फुर्ती आ गई थी। उसने तुरंत ही ग्राहक का ड्राफ्ट बना दिया था। आज हर सरकारी कार्यालयों में, सभी अधिकारियों की लगभग यही स्थिति है। जब ये बैंक आदि निजी संस्थानों के अधीन होते थे तो वहाँ का सर्वेसर्वा मैनेजर ही हुआ करता था। इस प्रकार की यह 'टालू टैक्नोलॉजी' या 'काम न करने की बात' अब गैर सरकारी संस्थानों में भी

देखी जा रही है। फिर भी वहाँ इसका प्रतिशत कम ही है। क्योंकि वहाँ के बॉस को, कुछ अतिरिक्त अधिकार मिले हुए होते हैं!

अब शर्माजी की पत्नी का वाकया भी सुन लीजिए। वे अपने बच्चे को पढ़ाती थीं। छोटा बच्चा होने के कारण वह जल्दी नहीं बोल पाता था। वह समझ भी नहीं पाता था। तब श्रीमतीजी गुस्से से बोल पड़तीं, "गधा! तुम तो पूरे गधे ही हो!" तब उस बच्चे की समझ में आया कि हम लोग आदमी नहीं गधे हैं। उसके बाद वह 'डी' से डंकी! डंकी माने 'हम' रटने लगा था। तब श्रीमती शर्मा ने उसे समझाया, "डंकी माने गधा होता है।" तब वह डी माने डंकी बोलने लगा। तब कहीं वह बच्चा आदमी और गधे के अंतर को समझ पाया था!

एक घटना इस प्रकार है। एक दिन श्याम बाबू ने अपने साले के बेटे से कहा, "अच्छा अनूप, तुम राइडिंग करते हो?"

"नहीं।"

"तुम्हारे डैडी तो हमेशा ही राइडिंग करते हैं। तुम अपने डैडी से कहो कि वे तुम्हें भी राइडिंग करने का मौका दें। वे तुम्हें भी राइडिंग करवा देंगे।"

"मैंने तो उन्हें कभी भी राइडिंग करते हुए नहीं देखा।" बच्चे ने कहा।

"तुमने कभी नहीं देखा? फिर तो तुम उनसे पूछो कि डैडी, आप 'ऐस-राइडिंग' करते हैं या नहीं?"

ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनसे आदमी को 'गधा' बनाया जाता है या वह स्वयं ही 'गधा' बनने पर विवश होता है। आपने कभी अपने लिए निजी मकान तो बनवाया ही होगा। तब आपको कैसा महसूस हुआ होगा! जिसने भी एक बार मकान बनवा लिया, वह हमेशा के लिए तौबा कर लेता है। क्योंकि उस काम में उसे गधे की तरह से लगा रहना होता है। हाँ, गधे छोटे-बड़े हो सकते हैं?

शर्माजी ने मिस्त्री से पूछा, "मिस्त्रीजी, मुझे ऐसा-ऐसा काम करवाना है। इस पर कितना खर्चा आएगा?"

"यही कोई साठ-सत्तर हजार रुपये।" मिस्त्री ने कहा।

"ठीक है।"

मिस्त्री ने आगे कहा, "अरे, कुछ नहीं। एक दिन में इसे तोड़ेंगे और दो दिन में इसे जोड़ देंगे!"

लेकिन यह क्या? उस मिस्त्री ने उस काम में पूरे दो साल ही लगा दिए। खर्चा भी साठ-सत्तर से बढ़कर दो-ढाई लाख हो गया। उस मिस्त्री ने शर्माजी को खूब बेवकूफ (गधा) बनाया। कहा जा सकता है कि आज मकान बनवाने वाला आदमी, आदमी नहीं, 'गधा' बनकर रह जाता है!

यहाँ के नेताओं और जनता के भी उदाहरण दिए जा सकते हैं। हमारे नेता

बार-बार जनता को गुमराह कर, कुर्सी पर जम जाते हैं। जबकि जनता भी अच्छी तरह से जानती है कि इस नेता ने पिछले पांच सालों में, उनके लिए कोई भी काम नहीं किया है। जब-जब भी जनता ने उनसे मिलने का प्रयास किया, उन्हें बेरहमी से झिड़क दिया गया है। जबकि जनता के बलबूते पर ही वे महाशय ऊँची कुर्सी पर जमे होते हैं। उन्हीं के कारण तो नेता लोग विधान सभाओं या संसद में पहुँचा करते हैं। (माफ कीजिए साफ-सुथरी छवि वालों के लिए मेरा कथन अपवाद कहा जाएगा।) यह जनता कितनी बार बेवकूफ (गधा) बनती है। नेता न जाने कितनी ही बार जनता को सब्जबाग दिखलाकर बेवकूफ बनाते रहते हैं और यह जनता बार-बार उसके जाल में फँस ही जाती है।

एक साधु ने अपने तोते को यह सिखला रखा था "बहेलिया आएगा, जाल बिछाएगा, दाना डालेगा, जाल में फँसना नहीं।" इस बात को उसका तोता अच्छी तरह से जानता है फिर भी वह जाल में फँस ही जाता है! वही दशा यहाँ की जनता की भी हो गई है। एक व्यक्ति कीचड़ में फँस गया। वह अपने पाँव आगे बढ़ाता है तो कीचड़ होता है। पीछे करता है तो भी कीचड़ ही होता है। यही हाल आज जनता की हो गयी है। ये नेता लोग, उसे गधा बनाकर ही रहते हैं!

इसी प्रकार आज का आदमी 'दर्शक' बनकर भी 'गधा' बनता है। आप इन दिनों के फिल्मों में अक्सर देखते ही होंगे कि निन्यानबे प्रतिशत फिल्मों में, एक ही कहानी हुआ करती है। इस कारण वह दर्शक जब फिल्म देखने के लिए सिनेमा हॉल में जाता है तो वहाँ उसे 'बोरियत' के अलावा और कुछ भी तो नहीं मिलता। तीन घंटे के लिए वह वहाँ 'गधा' बना रहता है। गेट पर तैनात 'गेट कीपर' जब टिकटें फाड़कर दर्शक को अंदर भेजता है तो वह पूरे तीन घंटे तक गेट बंद किए रहता है। ताकि अंदर का कोई 'गधा' बाहर न निकलने पाए! आज का आदमी पैसा खर्च करके भी 'गधा' बनता है। यदि इसे श्रेणीवद्ध किया जाए तो यह दर्शक निम्न श्रेणी का गधा कहा जाएगा।

भारत की आत्मा गाँवों में वसा करती है। सच तो यह है कि जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति है वह गाँवों से ही प्रभावित है। फिर गाँवों की भीनी-भीनी खुशबू को कौन नहीं महसूस करना चाहेगा! हम आपसे पूछते हैं कि क्या कभी आप गाँव गए हैं? क्या आप वहाँ की मिट्टी की भीनी-भीनी खुशबू को महसूसते हुए जिए हैं? क्या आपने गाँवों को समीप से देखा है? नहीं? तो चलिए साहब, हम आपको वहाँ के रंग-ढंग, भाषा आदि से परिचित करवा देते हैं! पहली बात तो यह है कि वहाँ जाने वाला हर शहरी व्यक्ति 'गधा' ही बनता है।

मान लीजिए आप किसी गाँव की ओर जा रहे हैं। आपको तो नहीं मालूम कि वह गाँव कहाँ और कितनी दूरी पर है? सचमुच आप उसके भूगोल के बारे में

कुछ भी नहीं जानते हैं? इसलिए जब आप शहर से निकल कर, किसी गाँव में प्रवेश करते हैं तो रास्ते में मिलने वाले आदमी से आप पूछते हैं, "बताइए, वह गाँव कितनी दूर है?" तब गाँव के लोग आपसे बोलते हैं, "बस, पउए भर तो आ।" फिर तो साहब, आप चलते जाइए। चलते जाइए। घंटे भर बाद आप अगर किसी दूसरे आदमी से पुनः पूछेंगे तो फिर आपको "बस, पउए भर तो बा।" सुनने को मिलेगा। हर आदमी यही कहता रहेगा कि वह गाँव "पउए भर तो बा"। आप चलते जाइए। वह "पउए भर जमीन" कभी भी खत्म नहीं होगी। अन्त में आप सुबह से चलकर, शाम को ही, उस गाँव की दूरी तय कर पाएँगे। हर कहीं आपको "बस, पउए भर बा" ही सुनने को मिलेगा! सही दूरी कोई भी नहीं बता पाएगा। 'गधा' बनाने की यह परंपरा, ग्रामीण लोग सदियों से ही निभाते आ रहे हैं। जैसे कि शहरी आदमियों को 'गधा' बनाना उनका जन्मसिद्ध अधिकार हो? इस प्रकार के 'गधे' दूसरे दर्जे के हुआ करते हैं।

आज का आदमी पल-प्रति-पल किस प्रकार से 'गधा' बनता है, यह बात किसी से छिपी नहीं है। क्योंकि यह भी सच है कि आज का आदमी चोरी (नकल) कर अनेक प्रकार की डिग्रियाँ हासिल कर लेता है। ऐसे में वह अपने जीवन में सफलता प्राप्त नहीं कर पाता। न डॉक्टरी में, न इंजीनियरिंग में। क्योंकि ऐसी डिग्री लेकर वह स्वयं ही गधा बनता है। साथ ही वह अपने गार्जियन को भी गधा बनाता है। इस प्रकार का गधा प्रथम श्रेणी का होता है।

जिसने ईमानदारी से पढ़ाई की है, वह इस प्रकार की फर्जी डिग्रियाँ नहीं लिया करता। जिसका नाम 'मेरिट' में होता है, वह भला बेरोजगार कैसे रह सकता है? कदापि नहीं। वह तो हर प्रकार से सफलता प्राप्त करता रहता है। व्यापार में 'कर' यानी 'टैक्स' की चोरी से लोग धनपति बन जाया करते हैं। उनकी आत्मा उस चोरी को कभी भी स्वीकार नहीं करती। ऐसे में भी वह 'गधा' ही बनता है। जिस काम को आत्मा नहीं स्वीकारती, वह रुपया किस काम का? इसी प्रकार सरकारी कर्मचारी, जनता से रिश्वत लेकर अपना मकान बनवाता है या जमीन खरीदता है। निर्माता-निर्देशक दूसरी कहानी से आइडिया लेकर, नई फिल्म बनाता है, इस चोरी को उसकी आत्मा स्वीकार नहीं कर पाती। परिणाम यह होता है कि वह दर्शकों को 'गधा' बनाया करता है। इस कारण यह कहा जा सकता है कि आपकी जिधर भी निगाहें दौड़ती हैं, उधर आपको गधे-ही-गधे नजर आएँगे। ऐसा लगता है कि इस देश में, ऐसे गधों की बाढ़ ही आ गई है! जबकि यही देश अपने चरित्र के बलबूते पर कभी समूचे विश्व में पूज्य था।

आह प्याज! वाह प्याज!

फलों का राजा 'आम' है। इसलिए वह अपनी जवानी पर इठलाता रहता है। कभी-कभी यह अपने यौवन के अहं में इतना चूर हो जाता है कि दो साल के अंतराल में एक साल गायब होकर, लोगों को अंगूठा ही दिखलाने लगता है। कहावत है न कि जिसकी जवानी, उसका जमाना! इसलिए 'आम' अपने यौवन पर स्वयं ही इतराया करता है। उसे फलों का राजा होने का पूरा गुमान है। यही देखकर सब्जियों की रानी 'प्याज' को भी अपने यौवन पर गुमान होने लगा है। वह कहा करती है, "मैं सारी सब्जियों में सबकी रानी हूँ। मेरे बिना किसी सब्जी में स्वाद आ ही नहीं सकता। फिर क्यों न मैं अपने इस अहंकार में चूर होऊँ!" कहा जाता है न कि पड़ोसी को देखकर दूसरा पड़ोसी भी वैसा ही सीखता है। खरबूजे को देखकर दूसरा खरबूजा भी रंग बदलने लगता है।

'प्याज' ने खरबूजी रंग बदलना 'आम' से ही सीखा है। वैसे अपने आप पर अहंकार करना अच्छी बात नहीं होती। क्योंकि यही अहंकार एक दिन उसे चकनाचूर कर देता है। खैर, 'प्याज' को इन सब बातों से क्या लेना-देना! यह अहंकार अच्छा नहीं होता। रावण को भी अपनी विद्वत्ता पर अहंकार था। धरती पर सीढ़ी लगाकर वह स्वर्ग में जाने के सपने देखा करता था। अंत में वह राजा दशरथ के पुत्र राम के द्वारा मारा गया। प्याज रानी सोचती है कि जिंदगी में जवानी एक ही बार मिला करती है। फिर जवानी-जैसे 'कोहिनूर हीरे' को देखकर मैं क्यों न इतराऊँ! क्यों न दूसरों को अपना सुंदर चेहरा दिखलाकर तड़पाऊँ!

वैसे 'प्याज' में, वर्ष भर पूरी जवानी होती है। लेकिन इस बार प्याज ने अपने जवान होने का कहर लोगों पर ढा ही दिया। तभी तो यकायक वह बुर्के में आ गई। उसके सुंदर चेहरे के नैन कटीले हैं। उन्हें देखकर कोई उस पर नजर न लगा दे! इसलिए उसने बुर्का पहन लिया। ऐसे में लोग उसे प्रत्यक्ष न देख सके। इसलिए लोग चिल्ला उठे, "प्याज रानी तू किधर चली गई? कहीं वह गायब तो नहीं हो गई?" भाई मेरे, जब किसी युवती में जवानी की कोंपलें फूटने लगती हैं तो उसके आस-पास युवक भौंरों की तरह से मंडराने लगते है। उसी प्रकार जब प्याज भी युवती हो आई तो वह पर्दानशीन ही बन गई। जिससे उसके चाहने वालों

में हंगामा ही मचने लगा। लोग उसे कभी इधर तो कभी उधर खोजने लगे। लेकिन वह है कि किसी से भी रू-ब-रू नहीं हो रही थी। जैसे वह राजा दशरथ की रानी कैकेई की तरह 'कोप भवन' में ही जा बैठी हो! उसे न देख पाने पर उसके चाहने वालों में बेजारी ही छाने लगी है। कुछ लोग तो मजनूं बनकर गाने ही लगे हैं, "प्यार को चाहिए, एक नजर!" कुछ उसके साथ अपना प्यार इन शब्दों में जतलाते हैं, "रुख से जरा नकाब हटा दो, मेरे हुजूर!" इस प्रकार आज बाजार में, दुकानदार और सारे ग्राहक उसकी एक झलक पाने के लिए बेकरार हुए जा रहे हैं।

उस दिन जयपुर में एक कपड़े के व्यापारी ने अपनी दुकान के आगे एक बोर्ड लगा दिया। उसमें लिखा था, "आप एक सूट का कपड़ा लें और बदले में एक किलो प्याज फ्री ले जाएँ।" इससे उस व्यापारी की दुकान में काफी भीड़ जमा होने लगी। वहाँ लोग लाइन बनाकर खड़े होने लगे। वह ग्राहकों को सूट का कपड़ा देता और साथ ही एक किलो प्याज उपहार स्वरूप देता। कपड़े का वह व्यापारी लाखों नहीं, करोड़ों का व्यापार करने लगा। इसे देखकर दूसरे व्यापारियों में खलबली मच गई। इसलिए आज बहुत सारे व्यापारी इसी तर्ज पर अपना व्यापार करने लगे हैं। इसमें हर प्रकार के व्यापारी हैं, जो उसी कपड़ा व्यापारी की राह पर चलने लगे हैं। वे लखपति से करोड़पति बनने लगे हैं। इसके लिए पर्दानशीन होने पर दुकानदार प्याज को धन्यवाद दिया करते हैं। क्योंकि इस महा मंदी के दौर में उनका व्यापार केवल प्याज के कारण ही चल पाया है!

एक दिन रमेश ने अपने पापा से पूछा, "पापा, सामने वाले जोशी अंकल कितना कमाते हैं? क्या वे हमसे अधिक धनी हैं?"

"क्यों बेटा?"

"वे अपने खाने के साथ प्याज का सलाद खाया करते हैं।"

"ओ!" यह कहकर उसके पापा चुप हो गए थे।

"पापा, ये जोशी अंकल अमीर जरूर होंगे। इसलिए वे प्याज का सेवन किया करते हैं। हम लोग तो बिना प्याज के ही खाया करते हैं।"

सचमुच आज इस प्याज के बारे में क्यों नहीं लोग ऐसी बातें करेंगे! आज उसकी कीमत पचास-साठ नहीं बल्कि सौ रुपये किलो हो गयी है। जिसे कल तक तीन-चार रुपये में कोई नहीं पूछता था, वह आज आसमान छूने लगी है। फिर भी, उसे प्राप्त करने के चक्कर में, सारे देश में मारपीट और खून-खराबा होने लगा है। ऐसे में कोई प्याज का प्रयोग सब्जी के साथ करे अथवा उसे सलाद के रूप में ले तो बहुत बड़ी बात है!

रामू अपने कस्बे से दिल्ली आया था। वह बेरोजगारी के कारण ही यहाँ आया था। उसने यहाँ नौकरी करनी चाही थी। इस बीच वह रहने के लिए मकान

भी खोज रहा था। एक दिन मकान मालिक गोपाल बाबू ने उससे पूछा, "क्या आप प्याज खाते हैं?"

"क्या बात है?"

"मैं पूछ रहा हूँ कि आप प्याज खाते हैं? यदि आप प्याज खाते हैं तो मैं अपना मकान किराये पर नहीं दे सकता।"

"क्यों भला?" रामू ने पूछा।

"यह बहुत ही बेकार की चीज है। इसकी हालत यह हो गई है कि इसे आज कोई खरीद ही नहीं सकता। इसे खाने और खरीदने में आदमी को रोना पड़ता है। ऐसे में कोई उससे क्या लगाव रख सकता है! मैंने तो इसे सदा-सदा के लिए छोड़ ही दिया है।"

"हाँ-हाँ। मैं भी तो प्याज नहीं खाता हूँ। जिसे खरीदते और खाते वक्त रोना पड़े, ऐसी चीज का सेवन कौन करेगा?"

"फिर ठीक है। आपको यह मकान मिल जाएगा।" गोपाल बाबू ने उसे अपने मकान में एक कमरा दे दिया।

इस प्याज के महँगे होने के कारण ही गोपाल बाबू ने अपने बेटे अरुण की शादी के लिए कुछ इस प्रकार का विज्ञापन दिया—"अपने बाईस वर्षीय बेटे के लिए एक वधू की आवश्यकता है। ऐसी कन्या जो बिना प्याज की अच्छी सब्जी बना सकती हो। ऐसी लड़की को प्राथमिकता दी जाएगी।"

कुछ दिनों बाद उस विज्ञापन के कारण, पाँच युवतियों के बॉयोडाटा सहित वैवाहिक प्रस्ताव गोपाल बाबू के पास आए। उन सभी में बिना प्याज के स्वादिष्ट सब्जी बनाने का उल्लेख किया हुआ था।

गोपाल बाबू ने उन सभी युवतियों को साक्षात्कार के लिए, अपने यहाँ बुलवा लिया। उन सभी ने बिना प्याज की बढ़िया सब्जी बनाई थी। तब एक हॉल में वे उनसे साक्षात्कार लेने लगे। हर युवती ने उन्हें वह सब्जी चटाई। एक युवती को, उन्होंने बहू के रूप में चुन लिया। उस चुनाव में वह युवती अपने को "विश्व सुंदरी" से कम नहीं समझ रही थी। वह स्वयं को 'ऐश्वर्या राय' या 'सुष्मिता सेन' के बराबर समझने लगी। तब गोपाल बाबू ने उसी सुंदरी से, अपने बेटे का विवाह कर दिया।

जिस दिन ये प्याज रानी बुर्का पहनकर पर्दानशीन हुई हैं, तब से इस देश की सरकार भी डाँवाडोल होने लगी। इसलिए देश में हर कहीं से यही सुनाई देने लगा, "कहाँ गई प्याजरानी?" सचमुच वह भी तो बाजार से एकदम ही गायब हो गई। लगता है वह अपनी जवानी के जलवे ही, दिखलाने लगी है। इसलिए तो उसके दीवाने सिसकारियाँ भरकर कहने लगे, "आह प्याज! वाह प्याज!"

मात्र इसी के कारण, तीन राज्यों में विरोधी पार्टियाँ जीत गईं। यह देखकर केंद्र सरकार हाथ मलती ही रह गई। तब ऐसा लगने लगा था कि जिसके पास प्याज नहीं, उसके पास ताज नहीं। इस कारण लोग केंद्र सरकार की खूब आलोचना करने लगे। आज तो जन-जन में इस प्याज का महत्त्व और भी बढ़ गया है। इसलिए आज लोग सुबह-शाम धूप-दीप और अगरबत्तियाँ जलाकर उसकी आरती उतारने लगे हैं, "ओम जय प्याज मिलो! स्वामी, जय प्याज मिलो! हे प्याज! आज अपना दर्शन देकर हम सबको कृतार्थ करो।" सचमुच प्याज के दर्शन न होने पर, आज जिधर देखिए उसके लिए शोर मच रहा है। कोई प्याज की सब्जी खाना चाहता है तो कोई उसके व्यापार से करोड़पति बनना चाहता है। कोई उसे अपने पास रखकर अपनी शान-शौकत बढ़ाना चाहता है। कोई दहेज में प्याज की माँग करने लगा है।

इन परिस्थितियों को देखकर, यह लेखक सोचता है कि यह प्याज कब तक कुँवारी रहेगी? वह जवान भी कब तक बनी रहेगी? क्या वह यों ही पर्दानशीन बनी रहेगी और लोग उसके लिए हाय-तौबा मचाते रहेंगे? इसलिए क्यों नहीं अब इसकी शादी ही कर दी जाए! इसके लिए लेखक ने पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापन दे दिया। कुछ दिनों के बाद, लेखक को बहुत आश्चर्य हुआ, जब उसके पास ढेरों पत्र आए। एक पत्र में लिखा था, "आप मुझे किसी काने-लँगड़े से ब्याह दीजिए लेकिन प्याज कुमारी से नहीं। भले ही मैं आजीवन कुँवारा ही रह ज़ाऊँ। क्योंकि प्याज कुमारी के लक्षण अच्छे नहीं हैं। इसके कारण ही आज चारों ओर हाय-तौबा मची हुई है। इससे मुझे शादी करनी ही नहीं है। ऐसी जिंदगी का क्या फायदा! फिर मुझे अपना घर, अजायबघर नहीं बनाना है क्योंकि हमारे यहाँ प्याजरानी को देखने वालों का ताँता ही लग जाएगा। इससे शादी करना तो अपने सिर मुसीबत मोल लेना है। इसलिए मैंने 'प्याज' से शादी न करने का मन बना लिया है।"

इस स्थिति को देखकर लेखक गंभीरता से सोचने लगता है, "मैं तो किसी की भलाई करने चला था। ऐसे में तो मेरी ही छीछालेदर हो गई है। ऐसी दशा में मैं कहीं का भी नहीं रह जाऊँगा। इसलिए क्यों न मैं हमेशा के लिए चुप्पी साध लूँ! रही बात शादी की तो प्याज कुमारी अपने लिए वर खुद ही ढूँढ़ लेगी। क्योंकि आज वह काबिल है, सुंदर है। वह जिसका भी हाथ पकड़ लेगी, उसका जीवन सँवर जाएगा। इस समय सरकार भी उसके विरुद्ध कोई कदम नहीं उठा रही है।"

लेकिन यह क्या! प्याज कुमारी ने तो अपना बुर्का उतार कर खुद ही फेंक डाला है। अब तो वह सरेआम हर कहीं दिखाई देने लगी है। शायद अब प्याज कुमारी को यह अहसास होने लगा हो कि अगर इस बढ़ती हुई उम्र में मैं सँभलूँगी नहीं तो मेरी मस्तीभरा यौवन यों ही बीत जाएगा। तब भविष्य में कोई भी मेरी कद्र

नहीं करेगा। इसलिए वह सरेआम दिखाई देने लगी है।

यह सब देखकर लेखक भी सोचने लगा, "प्याज और औरत दोनों एक ही जात की होती हैं क्योंकि आज तक कोई उनके रहस्यों को नहीं समझ पाया है। सब उसे ऊपर से ही देखा करते हैं। उसे तो भगवान भी नहीं समझ पाया है। प्याज जिस तरह से परत-दर-परत खुलती जाती है, उसी तरह से नये-नये रूपों में परिवर्तित होने लगती है। इसी प्रकार औरत भी परत-दर-परत जैसे-जैसे खुलती है, वैसे-वैसे उसके नये-नये चरित्र दिखाई देने लगते हैं। वैसे प्याज को घर लाकर खाइए और किसी लड़की को विवाह कर घर लाइए व उसके साथ घर बसाइए। फिर देखिए आपके साथ क्या होता है! आप अगर ये दो गुनाह, अपने जीवन में करते हैं तो आपको रोना ही पड़ेगा। उस समय आपके आँसू पोंछने वालाँ कोई नहीं होगा। सचमुच आज दोनों में कितनी समानता है! इसे आप स्वयं ही देख लीजिए।

खैर! 'प्याज कुमारी' देर से आई दुरुस्त तो आई। फिर अगर सुबह का भूला हुआ शाम को वापस आ जाए तो उसे भूला हुआ नहीं कहा करते। यह सब सोचकर लेखक सामने रखे 'प्याज की ढेरी' को जी भरकर देखने लगता है!

कुत्ता बाबा

राम बिहारी बाबू देखा करते हैं कि कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो कुत्तों से इतना अधिक प्यार करते हैं कि लगता है जैसे उनका सब कुछ वही हो! आरंभ में तो यह देखकर उन्हें घृणा हुई थी। उस समय वे सोचा करते, "आज का आदमी कैसे-कैसे शौक पाला करता है! इस शौक के पीछे पत्नी अपने पति को, पति अपनी पत्नी को, अपने माता-पिता को, पिता अपने बच्चों को भूलकर, केवल कुत्ते से ही प्यार किया करते हैं। जैसे कि उसके सिवाय इस दुनिया में उनका और कोई न हो! यदि आप किसी प्रेमिका को प्यार कर रहे हों तो उसके हृदय में बसने के लिए, सबसे पहले उसके कुत्ते को प्यार कीजिए! तब जाकर आपकी प्रेमिका, आपकी ओर मुख़ातिब होगी। काफी दिन तक राम बिहारी बाबू, इस कुत्ते प्रकरण पर सोचते रहे थे। अंत में वे इस नतीजे पर पहुँचे कि कुत्ता तो सिर्फ रक्षक होता है। इसके अलावा उसका कोई भी उपयोग नहीं है। फिर भी वे इन दिनों रात-दिन कुत्ते के बारे में ही सोचते रहते हैं!

एक दिन राम बिहारी बाबू को भगवान बुद्ध की तरह से सहसा ज्ञान की प्राप्ति हो आई। बुद्ध को 'गया' के बोधि वृक्ष के नीचे बैठकर ज्ञान-प्राप्ति हुई थी। लेकिन राम बिहारी बाबू को यह ज्ञान, रात के तीसरे पहर नींद खुलने पर हुआ था! इस ज्ञान के प्रकाश में उन्हें मालूम हुआ कि किसी कुत्ते से आसक्ति इसलिए होती है कि पूर्व जन्म में उससे प्रेम करने वाले का, उससे कोई-न-कोई संबंध अवश्य होता है। इसलिए लोग उससे इतना अगाध प्रेम करते हैं। कुछ महीनों के अंतर से उनके सामने कुछ उदाहरण दिखाई देने लगे।

राजीव बाबू ने एक कुत्ते को पाला था। वे उसे अपने पुत्र से भी बढ़कर प्यार किया करते। लेकिन उनसे अधिक उनकी पत्नी कुत्ते से प्यार करने लगी थी। वह अपने खाने से पहले, उस कुत्ते के खाने के बारे में सोचा करती। फिर उससे आसक्ति का एक कारण और भी था। राजीव बाबू सुबह सवेरे ही दफ्तर चल देते और देर रात को ही घर लौटा करते। इस बीच उनकी पत्नी, घर में अकेली ही रहा करती। इसलिए वे उस पर ज्यादा आसक्त होने लगी थी। फिर एक दिन वह

कुत्ता बीमार पड़ गया। उन्होंने कई डॉक्टरों से उसका इलाज करवाया। लेकिन वह बच न पाया। तब उनकी पत्नी ने घर के समीप ही उसे गड़वा (दफना) दिया था। फिर एक सप्ताह तक वह वहाँ जाकर धूप-बत्ती जलाती और उसकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करती रहती। वह उसे इतना प्यार करती थी कि उसके बिना वह गमगीन रहने लगी थी!

राम बिहारी बाबू के ही बगल में हरिवंश बाबू का सरकारी आवास था। उन दिनों दुर्गा-पूजा पर वे छुट्टियों में पूरे परिवार के साथ अपने घर गए थे। छुट्टियाँ मनाकर जब वे घर आए तो थ्रीव्हीलर में बैठे हुए कुत्ते का एक्सीडेंट हो गया। हुआ यह था कि 'टॉमी' अपने आवास को देखकर, थ्रीव्हीलर से नीचे कूद पड़ा था, जिससे किसी वाहन की चपेट में आने से, उसकी टाँग टूट गई थी। उस समय तो कुछ नहीं हुआ था। बाद में उसकी टाँग पर प्लॉस्टर चढ़वाना पड़ा। फिर एक्सरे करवाकर, उसकी टाँग पर पुनः प्लॉस्टर करवाया गया। इस समय वे इतने परेशान हो गए थे जैसे कि उनके किसी परिजन का ही पैर टूट गया हो! बाद में कई हजार रुपये खर्च करने के बाद ही, उसकी टाँग ठीक हो पाई!

एक दिन महेश बाबू के घर के पास एक कुतिया ठंड के मारे ठिठुर रही थी। उनकी पत्नी शकुंतला से यह नहीं देखा गया। तब वह उस कुतिया को अपने ओसारे में ले आई। उस पर पुआल रखकर उसे गरमाया। दो दिन बाद, उसने चार-पाँच पिल्लों को जन्म दिया। एक दिन महेश बाबू उन्हें ओसारे से बाहर निकालने को हुए। इस पर उनकी पत्नी ने कहा, "अरे आप इन्हें बाहर क्यों भेज रहे हैं! बच्चे थोड़े-से बड़े हो लेंगे तो कुतिया उन्हें अपने आप ही ले जाएगी।"

"ठीक है। जैसा तुम चाहो, करो।" कहकर महेश बाबू अपने ऑफिस चल दिए।

लेकिन यह क्या! एक दिन महेश बाबू की नजरें अपनी पत्नी पर जा लगीं। देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। पत्नी उसे एवं उसके पिल्लों को दूध-रोटी खिला रही थी। वे चुप रहे। पत्नी के उन क्रिया-कलापों को वे महीनों तक देखते रहे। जब वे पिल्ले काफी बड़े हो आए तो उन्होंने पत्नी से उन्हें हटाने को कहा। इस पर पत्नी बोली, "ये हम लोगों का कोई अनिष्ट तो नहीं कर रहे हैं। इसलिए इन्हें यहीं रहने दीजिए न!"

"ठीक है, जैसा तुम चाहो।" इस बार भी उन्होंने हथियार डाल दिए।

शकुंतला ने उन पिल्लों के पीछे काफी समय लगाया। अपने खाने की चिंता किए बिना वह उनकी परवरिश में ही लगी रहती। उसके बाद भी वे पिल्ले, एक-एक कर मरते गए। सबके मर जाने पर, वह बहुत दुखी हुई। उसने उन पर, अपना सब-कुछ लुटाया था। इसलिए आजकल वह उदास बैठी रहती और पिल्लों

के ही बारे में सोचा करती। उसने अपना खाना-पीना भी कम कर दिया। महेश बाबू ने जब पत्नी की यह हालत देखी तो वे उसे किसी हिल स्टेशन ले गए। तब वहाँ के नये वातावरण से वह ठीक हुई।

इन दिनों राम बिहारी बाबू कुत्ते वाले प्रसंग पर कुछ ज्यादा ही सोचने लगे हैं। अगर इन सब बातों को एक जगह लिखा जाए तो इस कुत्ते पर एक पूरी 'थिसिस' ही लिखी जा सकती है। लेकिन ताज्जुब होता है कि कल तक वे इससे घृणा करते थे, आज वे स्वयं 'कुत्ता-प्रेमी' हो गए हैं। उनके विचार बदल गए हैं। अब तो वे लोगों से कहते फिरते हैं, "हर आदमी को कुत्ते से प्रेम अवश्य करना चाहिए। उसे अपना रक्षक ही नहीं बल्कि और भी गुणों से भरा हुआ मानना चाहिए। जैसे—जीवन-साथी के रूप में, किसी अपराध हो जाने पर जासूस के रूप में। वह तो अपराधी के कपड़े सूँघकर ही उसकी पोल खोल देता है। सचमुच वह एक सफल जासूस होता है। इन्हीं जासूसी कुत्तों के द्वारा ही तो आज, हजारों मामले सुलझाए जाते हैं। इस तरह से और भी गुण हैं जिसके लिए कुत्तों से प्रेम करना चाहिए।

फिर तो राम बिहारी बाबू ने कुत्तों के बारे में, अनेक जानकारियाँ मालूम कर लीं। जैसे कुत्ते को हमेशा जंजीर में बाँधकर रखना चाहिए। फिर जहाँ आप जाएँ उसे जंजीर पकड़े हुए ही ले जाइए। इससे वह बहादुर बनेगा। अगर आप उसे रास्ते में छोड़ देंगे तो वह कभी भी बहादुर नहीं बन पाएगा। यही नहीं, उसे किसी और कुत्ते के पास नहीं रहने देना चाहिए। इससे वह बुरा हो जाएगा। यदि आप शाकाहारी हैं तो उसे हमेशा दूध-रोटी खिलाना चाहिए। इससे वह बहादुर बना रहेगा। यदि आप उसे शेर जैसा बनाना चाहते हैं तो उसे सप्ताह में एक बार मीट (गोश्त) खिलाना चाहिए। फिर आप जैसा चाहेंगे वैसा ही उसका स्वभाव बन जाएगा। इस प्रकार कई प्रकार की बातें वे लोगों को बताने लगे। जिस प्रकार कोई डॉक्टर आरंभ में अपनी 'प्रेक्टिस' जमाने के लिए रोगियों को मुफ्त सलाह दिया करता है, उसी प्रकार वे भी, लोगों को कुत्ते के बारे में सलाह दिया करते हैं। फिर कुत्तों के संबंध में उन्होंने कई पुस्तकें जमा कर ली हैं। हर समय वे इन्हीं पुस्तकों में खोए रहते हैं। हालाँकि उन्होंने अब तक कोई भी कुत्ता नहीं पाला है। वे सोचते हैं कि सीमित आय में कुत्ते का भरण-पोषण वे कैसे कर पाएँगे? फिर उनकी पत्नी कुत्ते का नाम सुनते ही बिदक जाती है। उसने तो उन्हें चेतावनी ही दे रखी थी कि यदि उस घर में कुत्ता आएगा तो वह वहाँ नहीं रहेगी और उन्हें छोड़कर मायके सदा के लिए चली जाएगी। इसीलिए वे अब तक किसी कुत्ते को अपने घर नहीं ला पाए थे।

लेकिन पड़ोस की घटना से राम बिहारी बाबू कुत्ता पालने के लिए राजी हो

गए हैं। अब तो उनकी पत्नी भी रजामंद हो गयी है। हुआ यह कि विपिन बाबू के यहाँ एक रात को, कुछ डाकू डकैती डालने पहुँच गए थे। तभी उनके छोटे-से नटखट बेटे ने अपना टेप चला दिया था। उसमें से भौंकते हुए कुत्तों की आवाजें आने लगी थीं। उसे सुनते ही वे डाकू वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गए थे। तब से उन्हें कुत्तों के प्रति आसक्ति होने लगी थी। जिससे उनके घर में भी, कुत्तों का लालन-पालन होने लगा था।

आज राम बिहारी बाबू के घर में, कई प्रकार के कुत्तों का पदार्पण हो चुका है। जो एक-से-एक बढ़कर हैं। कोई देशी है, कोई विदेशी है। कोई भूरा है तो कोई उजला है। कोई पहाड़ी है। वे उन कुत्तों को गोद में उठाकर, इस प्रकार से प्यार किया करते हैं जैसे कि अपने बच्चों को किया जाता है। आज कोई भी कुत्ता लेकर, उनके पास आता है तो उन्हें, उनका आशीर्वाद प्राप्त हो जाता है। कभी-कभी तो आदमी इस भ्रम में पड़ जाता है कि यह व्यक्ति आदमी है या कुत्ता! क्योंकि राम बिहारी बाबू ने, कुत्ते की संगति में रहकर अपना स्वभाव भी वैसा ही बना लिया है। वे इतना आशीर्वाद तो अपने बच्चों को भी नहीं देते हैं! आज उनके इस 'कुत्ता-प्रेम' के कारण, पूरे शहर का बच्चा और बूढ़ा उन्हें आदर देता है। जब वे कुत्ते पर बोलते हैं तो सुनने वाले उन पर मोहित ही हो जाते हैं। सचमुच आजकल वे किसी साधु-संत की तरह से कुत्ते के बारे में उपदेश देते रहते हैं!

इस प्रकार आज राम बिहारी बाबू चारों ओर इस कुत्ते के कारण चर्चित होने लगे हैं। अब तो इस शहर में ही नहीं, बल्कि दूर-दूर के लोग भी उनके पास अपने कुत्तों को लेकर आते हैं और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया करते हैं। वे उसके इलाज से लेकर, उसके रख-रखाव तक की सारी बातें लोगों को बतला देते हैं।

राम बिहारी बाबू की अपनी गाड़ी नहीं है। फिर भी वे लोगों से उधार की गाड़ी माँग कर, कुत्तों को हवाखोरी के लिए ले जाया करते हैं। इसी प्रकार उनकी पत्नी भी, अब कुत्तों को पूरा प्यार और ममत्व देने लगी है। इस संबंध में कहा जा सकता है कि "समय बड़ा बलवान हुआ करता है।" क्योंकि जो आदमी पहले कुत्ते से घृणा करता था, आज वही 'कुत्ता भक्त और प्रेमी' हो गया है। जो राम बिहारी बाबू कुत्ते से बिदका करते थे, आज वही कुत्तों की संगति में रह रहे हैं। तभी तो वे चारों ओर 'कुत्ता बाबा' के नाम से जाने-पहचाने जाते हैं।

सफेद दाढ़ी

भारत आरंभ से ही ऋषि-मुनियों का देश रहा है, जहाँ ये महापुरुष बिना किसी भेदभाव के लोगों को परस्पर प्रेम का पाठ पढ़ाया करते थे। समय-समय पर, ऋषि-महापुरुष अपने प्रेम और तपस्या के बल पर, देवी-देवताओं को प्रसन्न रखकर, उनका साहचर्य प्राप्त किया करते थे। उस समय उनके चेहरों से ऐसा तेज टपकता था कि वे किसी भी व्यक्ति को आशीर्वाद या शाप देने में सक्षम हुआ करते थे। ऐसा इसलिए होता था कि ये महापुरुष साधारण मानव से ऊँचे उठकर, असाधारण शक्ति के मालिक बन जाया करते थे। यह देखकर कहा जा सकता है कि उस समय ऐसा व्यक्ति ईश्वरीय दूत के रूप में जाना जाता था। तभी तो वह सारे संसार में पूज्य होता था। ऐसे साधु-संतों में अनेक धर्म-संप्रदायों के लोग हुए हैं। शिरडी में साई बाबा, सिक्खों के दसवें गुरु नानकजी, मुजफ्फरपुर के मुजफ्फर शाह फकीर आदि ऐसे ही महापुरुष हुए हैं। ऐसे महापुरुषों का स्वरूप फिर क्यों नहीं किसी मानव के हृदय में बसेगा? उस समय यह 'सफेद दाढ़ी' इन साधु-संतों की एक अलग ही पहचान बनाया करती थी। इसी प्रकार अनेक देवताओं की भी, यही 'सफेद दाढ़ी' हुआ करती थी। जैसे—ब्रह्माजी, विश्वकर्माजी और शिवजी!

आज सभी धर्मों में इस 'सफेद दाढ़ी' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके कारण आदमी का स्थान, उस समाज में ऊँचा माना जाता है। इन विशिष्ट लोगों की मात्र एक झलक देखने के लिए साधारण लोग तरसा करते हैं। आज से हजारों वर्ष पहले जब भारत विश्व में 'गुरु' रूप में पूज्य था, तब यहाँ के लोगों ने, अपने समूचे जीवन को, चार भागों में बाँट दिया था। इन्हें आश्रम कहा जाता था। ये थे—ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम! इस संन्यास आश्रम में आदमी अपने सारे परिवार की मोह-ममता को त्यागकर, परिवार व समाज से विलग होकर, जंगलों में रहने लगते थे। वहाँ कंद-मूल और झरनों का पानी पीकर, वे अपना शेष जीवन व्यतीत किया करते थे। वहाँ वे भगवान का भजन करते हुए तपस्या किया करते थे। फिर तो मुड़कर भी वे अपने परिवार की ओर नहीं देखते थे। ये तपस्वी सभी महिलाओं को, माँ की तरह से देखा करते।

ऐसी दशा में यदि उनकी पत्नी भी उनके सामने आ जाए तो वे उसे भी माँ सदृश ही समझा करते थे। हिंदू धर्म में ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाते हैं। बुद्ध और महर्षि विश्वामित्र ऐसे ही तपस्वी थे!

सच तो यह है कि आज भी जब कोई व्यक्ति, किसी भी साधु-संत को दाढ़ी बढ़ाए हुए देखता है तो उसे उसमें प्राचीन समय का तेज चमकता हुआ दिखाई देता है। ऋषि-मुनियों का यही स्वरूप लोगों के मन में आज भी बसा हुआ है। तभी तो लोग उन्हें आदर और प्रतिष्ठा दिया करते हैं। इसलिए आज भी इस 'सफेद दाढ़ी' का महत्त्व है। तभी तो 'सफेद दाढ़ी' वाला जब किसी दूसरे व्यक्ति से बात करता है तो उसके व्यक्तित्व से वह व्यक्ति, अत्यधिक प्रभावित होता है!

निर्मल आज मात्र तीस वर्ष का ही है। लेकिन अपनी 'सफेद दाढ़ी' के कारण, लोग उसे किसी बुजुर्ग से कम नहीं मानते। प्रकृति ने भी उसके साथ ऐसा मजाक किया है कि उसके सिर के सारे बाल गायब हो चले हैं। उसके बाद उसकी दाढ़ी के सारे बाल सफेद कर दिए हैं। जब वह दाढ़ी बढ़ाने लगा था तो वह सोचा करता था, 'मेरे बाल सफेद होते जा रहे हैं। अब मैं बूढ़ा होने लगा हूँ।' यही कारण था, शुरू-शुरू में वह दाढ़ी बढ़ने का विरोध करने लगा था। इसलिए उसने रोज ही दाढ़ी बनानी शुरू कर दी थी और सिर पर 'विग' लगाया करता। कारण, वह युवतियों के बीच अपना मान-सम्मान चाहता था। लेकिन प्रकृति के आगे आदमी हार जाता है। मनुष्य प्रकृति का दास हो गया है। फिर तो उसकी वह बढ़ती हुई दाढ़ी, एक दिन पूरे शबाब पर आ गई। धीरे-धीरे उसे उससे प्यार भी होने लगा था। फिर क्या था? निर्मल शान से उस 'सफेद दाढ़ी' के वशीभूत होकर, उसे बढ़ाने लगा था। एक दिन उसकी वह दाढ़ी इतनी बढ़ आई कि वह साधु-संत-सा दिखाई देने लगा और उस 'सफेद दाढ़ी' में वह अपने पिता की उम्र से भी अधिक का लगने लगा! बाद में उसे इस 'सफेद दाढ़ी' से कई लाभ नजर आने लगे।

एक बार निर्मल ठेकेदारी के पेशे में आया। वहाँ उसे एक 'एस.डी.ओ.' से भेंट हुई। संयोग से वे साहब भी निर्मल की ही तरह अध्यात्मवादी विचारों के थे। ऐसे में उन दोनों की जोड़ी ऐसी जमी कि वे एक-दूसरे के दीवाने हो गए। उन दिनों निर्मल के दूसरे दोस्त भी होते। जिनके अब तक बाल सफेद नहीं हुए थे। जब वे निर्मल के साथ होते तो 'एस.डी.ओ.' साहब उन्हें बुरी तरह से फटकार देते, "बुजुर्गों के पास बैठकर क्या लौंडा-छोंडा कर रहा है। सो, यहाँ से जाओ।" यह सुनकर उसके दोस्त भाग खड़े होते। वे लोग दोबारा, उन दोनों के बीच नहीं आते। मात्र इस कारण निर्मल के बिलों का भुगतान भी उसे ठीक समय पर प्राप्त हो जाया करता था। फिर तो वह देखते ही देखते लखपति हो गया था, लेकिन इसका परिणाम बहुत बुरा निकला। कारण यह था कि दूसरे ठेकेदारों का भुगतान

न होने पर, वे निर्मल के शत्रु बन गए थे। वे हमेशा ही निर्मल को नुकसान पहुँचाने की ताक में रहा करते। सहसा ही एक दिन, वे 'एस.डी.ओ.' साहब अपनी नौकरी से रिटायर हो गए। तब निर्मल ने सोचा कि जब उनका कर्ता-धर्ता ही यहाँ से चला गया है तो वह वहाँ रहकर क्या करेगा? फिर उनके न रहने से उसका मन भी नहीं लगता था। तब एक दिन उसने भी उस पेशे को हमेशा के लिए छोड़ दिया!

निर्मल ने दूसरा पेशा किसी सेविंग कंपनी के एजेंट के रूप में अपनाया। वह अपने मित्रों, संबंधियों और आस-पास के लोगों को, उस कंपनी में पैसा लगाने के लिए प्रोत्साहित करने लगा। वह अपनी 'सफेद दाढ़ी' पर हाथ फिरा-फिराकर, उन लोगों को कहा करता, 'आपके शरीर में जो खून है और आपके पास जो पैसा है वही आपके काम आएगा। दूसरा कोई नहीं। इस दुनिया में यदि आपके पास ये दोनों चीजें नहीं हैं तो आपका इस संसार में कोई अस्तित्व नहीं है। आपकी संतान भी आपको नहीं पूछेगी।' ऐसे में लोग सोचते कि ऐसा बुजुर्ग और परिपक्व आदमी, जब ऐसी बातें कह रहा है तो उसमें सच्चाई ही होगी। तब वे अपना पैसा उस कंपनी में जमा करवाने लगते। इस क्षेत्र में उसने चमत्कार ही कर दिया। फिर तो उसकी तरक्की पर तरक्की होती गई और वह एक अच्छे 'ऑर्गनाइजर' का उदाहरण बन गया था! अब वह एक जमींदार की तरह से, घर बैठे ही लाखों रुपये कमाने लगा। लेकिन जब कोई आदमी अचानक बड़ा हो जाता है तो उसके सुख के दिन भी जल्द लद जाते हैं। निर्मल के साथ भी यही कुछ हुआ। जल्द ही वह फुटपाथी हो गया!

कुछ वर्ष बाद निर्मल ने कुछ पैसे जोड़कर, एक 'होमियोपैथी' की क्लीनिक खोल ली। वहाँ वह रोगियों की बातें ध्यान से सुना करता। गहन मनन-चिंतन के बाद ही वह उन्हें दवाई देता। उसकी दवाइयों से रोगी जल्द ठीक हो जाया करते। तब दूर-दूर से रोगी, उसके पास आने लगे। वहीं और भी 'होमियोपैथ' के डॉक्टर थे। जिनकी मक्खियाँ मारने की हालत हो गई थी। इधर सारे रोगी निर्मल से ही अपना इलाज करवाया करते। तब तक धीरे-धीरे उसने उस पेशे की डिग्री भी हासिल कर ली थी। यह डिग्री उसे अपने दुश्मन डॉक्टरों के कारण ही लेने पड़ी थी। अब वह सफल डॉक्टर है। अहंकार उसमें कुछ भी नहीं है। रोगी को लगता जैसे कोई उससे, मंदिर का पुजारी बात कर रहा हो! जब कोई रोगी शराब या नशे से अपने रोग को बढ़ा देता तो निर्मल उसे डाँटने लगता। फिर वह उसका इलाज करना ही बंद कर देता। तब वह रोगी सोचता कि उसे विद्वान् पुरुष से दुत्कार मिली है। वह सँभल जाता। वह बुरी आदतें छोड़ देता। फिर वह निर्मल के पाँवों पर गिरकर, उनसे माफी माँगने लगता। तब वह उसे किसी बुजुर्ग की तरह से माफ कर देता!

एक दिन निर्मल ने अपना वह क्लीनिक बंद कर दिया। वहाँ से वह 'मधुबनी' की ओर चल दिया। इसका कारण यह था कि इसी जगह से, उसके पास बहुत सारे रोगी, इलाज करवाने आया करते थे। इसलिए वे लोग 'मधुबनी' में ही उससे क्लीनिक खोलने के लिए कहा करते। शुरू-शुरू में इस नीरस जगह में उसका मन ही न लग पाया था। लेकिन थोड़े ही दिनों बाद उसकी 'सफेद दाढ़ी' और मृदुल व्यवहार से, लोग उसका और भी अधिक सम्मान करने लगे। धीरे-धीरे यहाँ, वह लोगों के हृदय पर राज ही करने लगा था। वहाँ के लोग उसे अपने परिवार के सदस्य की तरह से मानने लगे थे। इस कारण वे उसके लिए सुबह-शाम कच्चा-पक्का खाना लेकर आते। लेकिन अपनी आदत के मुताबिक वह उसे लेने से इनकार कर देता। फिर वहाँ वह संक्रामक रोगों का भी इलाज करने लगा। यहाँ उसके रोगी सभी धर्मों के होते। उनके साथ वह ऐसा घुल-मिल जाता था जैसे कि वह उसी धर्म का हो! अगला व्यक्ति उसे अपने धर्म का हितैषी ही समझने लगता था। इसलिए वे लोग निर्मल को अपने यहाँ ब्याह-शादी और अन्य अवसरों पर भी बुलाया करते। वे उसे आदर सहित निमंत्रित किया करते। जहाँ भी वह पहुँचता, वहाँ उसका ऐसा आदर होता जैसे कि उस समाज का वह एक प्रतिष्ठित पुरुष हो! यह सब कुछ इसी 'सफेद दाढ़ी' के कारण ही होता था। वह लोगों से कहा करता कि सभी ईश्वर की संतानें हैं। सभी धर्मों में प्रेम करना लिखा हुआ है। इसलिए मानव-मानव को आपस में प्रेम करना चाहिए!

निर्मल को इस 'सफेद दाढ़ी' से एक ओर फायदा हुआ। वह जब भी किसी बस या ट्रेन में सफर करता, लोग उसे आदर के साथ अपनी सीट दे दिया करते। इसलिए उसे सफर में कोई असुविधा नहीं होती थी। वैसे भी रेलवे की ओर से उसे 'वरिष्ठ नागरिक' की छूट मिल जाया करती। जब वह टिकट खरीदने किसी लाइन में लगता तो लोग उस 'सफेद दाढ़ी' के कारण उसे बिना लाइन के ही टिकट लेने देते!

एक बार ऐसा हुआ कि निर्मल जेल की हवा खाते-खाते बच गया था। हुआ यह था कि उन दिनों उसकी पत्नी की तबीयत खराब थी। जैसे ही उसे सूचना मिली, उसने ट्रेन पकड़ ली थी। उसने सोचा कि गाड़ी में ही वह टिकट बनवा लेगा। सहसा ही आगे के स्टेशन में मजिस्ट्रेट चेकिंग शुरू हो गई। वह पसोपेश में पड़ गया था। अब उसे पकड़ लिया जाएगा! ऐसे में समाज में उसकी बदनामी होगी। वह चुप ही रहा। तभी मजिस्ट्रेट ने उसके पास आकर पूछा था, "बाबा, आप कहाँ जा रहे हैं?"

"बच्चा, मुझे राम जन्मभूमि जाना है।" निर्मल ने बात बना दी थी।

वह ट्रेन उधर ही जा रही थी। उन दिनों राम जन्मभूमि एक चर्चा का विषय

बनी हुई थी।

"ठीक है। अपना टिकट दिखलाइए।"

"बच्चा, हम जल्दी में थे। इसलिए टिकट नहीं ले पाए।"

"फिर कैसे होगा?"

"मुझे राम जन्मभूमि जाना था। इसलिए जो भी गाड़ी मिली, उसी में बैठ गया।"

"ठीक है, बाबा। अब आपको 'कृष्ण जन्मभूमि' जाना होगा।" कहकर वे श्रीमानजी दूसरे यात्रियों का टिकट चेक करने लगे थे। उसके बाद वे निर्मल को उतार कर, अपने साथ ले जाने को हुए। इस पर सभी यात्रियों ने निवेदन किया था, "इस बाबा को आप कहाँ ले जा रहे हैं? कृपया इन्हें छोड़ दीजिए।"

"क्यों छोड़ूँ? इनके पास टिकट नहीं है।" मजिस्ट्रेट बोले।

बाद में यात्रियों के बहुत आग्रह पर, निर्मल को छोड़ दिया गया। वह जेल की हवा खाते-खाते रह गया था। इसके लिए उसने अपनी 'सफेद दाढ़ी' को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। उसकी इज्जत पर जो आज काला धब्बा लगने वाला था, इसी 'सफेद दाढ़ी' ने बचा लिया था। नहीं तो आज वह समाज में मुँह दिखलाने योग्य नहीं रह पाता!

फिर कुछ वर्ष बाद, निर्मल इस 'सफेद दाढ़ी' से दुखी होने लगा। जिसे वह अब तक बेहद प्यार करता था, उसी के प्रति उसे अब अरुचि होने लगी थी। वह उससे अब जल्द-से-जल्द निजात पाना चाहता था। इसका कारण यह था कि आजकल बहुत सारे नेता, चोर-उचक्के और कातिल इस देश को लूट रहे थे। ये सारे कुकृत्य ये लोग, इसी 'सफेद दाढ़ी' की आड़ में करते आ रहे हैं। 'सफेद दाढ़ी' से लोगों के मन में जो कल तक आदर था, इन लोगों ने उसे मटियामेट कर दिया है! जिससे उसका मन आज क्षुब्ध हो गया है। आज कई नेता इसी 'सफेद दाढ़ी' की आड़ में, ऐसे-ऐसे कुकृत्य करने लगे हैं कि लोग शर्म से पानी-पानी होने लगे हैं। क्योंकि इस देश में अनेक प्रकार के घोटाले और कांड, इन्हीं 'सफेद दाढ़ी' वालों ने किए हैं!

देश में साधु-संतों की 'सफेद दाढ़ी' के प्रति जो श्रद्धा थी, जो आदर था उस पर इन लोगों ने आज पानी फेर दिया है। सारी आस्था पर आज इन लोगों ने दाग लगा दिए हैं। इसलिए यह देश विश्व में भी बदनाम होने लगा है। विदेशों के समाचारों में, आज इस देश को 'घोटालों के देश' के नाम से जाना जाने लगा है। यह कृत्य किसे घिनौना न लगेगा! आज इस प्रकार के लोग सोचा करते हैं कि यदि 'भारत' पर धब्बा लगता है तो उन्हें क्या? इसे इस देश की विडम्बना ही कहा जाएगा न? जबकि यह 'सफेद दाढ़ी' कभी विद्वत्ता, अध्यात्म और साधु-संतों की

पहचान हुआ करती थी।

आज निर्मल अपनी 'सफेद दाढ़ी' को सहलाता हुआ निरंतर देश की दुर्दशा के बारे में ही सोचता रहता है। अब उसे इस दाढ़ी में कुरूपता नजर आने लगी है। उसे 'लाल बहादुर शास्त्री' के चरित्र की बात याद आने लगी है। मात्र एक रेल दुर्घटना पर उन्होंने अपना पद त्याग दिया था। जबकि उसमें उनकी कोई गलती नहीं थी। सचमुच वे आदर्शवादी पुरुष थे। तब के नेता ऐसे ईमानदार हुआ करते थे। तभी तो लोग उन्हें आज भी पूजते हैं! लेकिन आज ये नेता हर प्रकार से अपनी कुर्सी को बचाने के चक्कर में रहते हैं। हालाँकि जनता इन नेताओं को खुलेआम गालियाँ देती है। फिर भी ये बेशर्म कुर्सियों से ही चिपके रहते हैं। आज इस देश में इस प्रकार के नेता थोक के भाव पर मिल जाएँगे!

निर्मल ने सोचा कि आज यह 'सफेद दाढ़ी' बदनाम हो चली है। इसलिए इसे कटवाना जरूरी हो गया है। तब उसने अनेक लोगों के सामने अपनी वह 'सफेद दाढ़ी' कटवा दी। जिस दाढ़ी को उसने अपने पुत्र की तरह से पाला था, उसी को आज उसने कटवा दिया था। इसकी सारी मोह-माया को, उसने तिलांजलि दे दी। उसने उससे अपने को मुक्त कर लिया। अब उसे अपनी उस 'सफेद दाढ़ी' से बिछड़ने का तनिक भी दुख नहीं था। लेकिन समाज के व्यक्तियों को उसके कटने से दुख हुआ। फिर वे लोग क्या जानें कि उसने किन परिस्थितियों और मानसिकता में अपनी प्यारी दाढ़ी कटवाई है!

चुनावी मैदान

पिछले चुनाव में रामनरेश ने अपने बेटे की शादी खूब धूमधाम से करने की सोची थी। ऐसे में वे अपने को बहुत गर्वित् महसूस करने लगे थे। उन दिनों वे सोचा करते थे कि यही मौका है अपने समधी साहब के सामने धौंस जमाने का। लेकिन तभी एक अनोखा हादसा हो गया था। उस दिन रास्ते में ही जिला कलक्टर के आदेशों पर, उनकी कार को 'सीज' कर दिया गया था। क्योंकि उसे चुनावी ड्यूटी पर लगाना था। तब उन सबको कार से उतरकर पैदल चलना पड़ा था। इस समय उन्होंने कहा भी था, "कार में दूल्हा बैठा है।"

"तो क्या हुआ? वो बस से चला जाएगा। यदि वह बस से जाएगा तो क्या उसकी शादी नहीं होगी?" अधिकारी ने यह कहकर उत्तर दिया था।

बहुत अनुनय-विनय करने के बाद भी रामनरेश की दो-तीन गाड़ियाँ 'सीज' कर ली गई थीं। परिणाम यह हुआ कि वे सब लोग, सदल-बल रोड नापते हुए सड़कों की धूल फाँकते हुए आगे बढ़ने लगे। उस ओर जाती हुई बसों को, उन्होंने हाथ से रुकने के संकेत भी किए थे लेकिन कोई भी बस नहीं रुकी थी। अचानक आधेक घंटे बाद, जब एक बस रुकी, तो वे लोग उसी में सवार हो गए थे। तभी वे समधी के यहाँ पहुँचे थे।

समधी महाशय ने जब उन्हें उस हाल में आए हुए देखा तो वे आश्चर्य में पड़ गए थे। उन्होंने उन्हें दुत्कारते हुए कहा था, "हुं! बड़े आए पैसे वाले! एक कार भी अपने साथ नहीं ला सके! अगर आपके पास अपनी कार न थी तो कम-से-कम कहीं से भाड़े की ही लेकर हमें दिखलाने के लिए ले आते। सचमुच मेरे समधी कंजूस ही नहीं, महा कंजूस हैं।"

समधी के वे खरे-खोटे शब्द, रामनरेश के कानों में पिघलते हुए शीशे की तरह पड़े थे। भगवान शंकर की तरह वे भी विष पीते रहे थे। जब समधी बोलते ही रहे, तब उन्होंने उन्हें सारी राम-कहानी सुना डाली। तभी होने वाले समधी शांत हो पाए थे। उस समय उन्होंने सोच लिया था कि अगर समधी इसी प्रकार उन्हें अपमानित करते गए तो वे लड़के को बिना शादी के ही वापस ले जाएँगे। जब

समधी चुप हो गए तब उन्होंने अपना निर्णय बदल लिया था।

फिर बेटे की शादी बिना विघ्न-बाधा के हो गई, तब वे तड़के ही दुल्हन को लेकर भाग खड़े हुए थे!

उस चुनाव में रामनरेश की गाड़ियाँ, उन्हें नहीं मिल पाई थीं। फिर वे जब उनमें बैठे हुए अधिकारियों को देखते तो उनके कलेजे पर साँप लोटने लगता और इधर उन्हें पैदल ही चलना पड़ता! इस कारण इन्हें काफी खलता! कुछ दिन बाद चुनावी हो-हल्ला समाप्त हो गया था। चुनाव संपन्न होने के बाद ही उन्हें उनकी गाड़ियाँ मिल पाई थीं। इसके लिए उन्हें चुनाव अधिकारी से लेकर, कलक्टर तक से मिलना पड़ा था! गाड़ियों की हालत खस्ता हो गई थी। इनकी मरम्मत करवाने में इनके पाँच-छह हजार रुपये लग गए थे। उस नुकसान को वे चुपचाप पी गए थे।

खैर! मरता क्या न करता! इन हालातों में आदमी को विवश होकर, खून का घूँट भरकर ही रह जाना पड़ता है। उस समय वह यही सोचकर संतोष कर लेता है कि 'इतना खर्च' करके भी उनकी गाड़ी तो मिल गई! 'जान बची, लाखों पाए' वाली कहावत इस समय चरितार्थ होती है! खैर इनकी गाड़ी तो रोड पर पकड़ी गई थी। कितने ऐसे लोग भी हैं, जिनकी गाड़ियाँ वे लोग जबर्दस्ती ही घर से उठा ले गए थे। इसे गुंडाराज ही तो कहा जाएगा। क्योंकि चुनाव में गाड़ियों को 'सीज' किए जाने की प्रक्रिया केवल इसी राज्य में है। दूसरे राज्यों में ऐसा नहीं है। वहाँ तो भाड़े की टैक्सियाँ और गाड़ियाँ ली जाती हैं!

उस बार के चुनाव में रामनरेश के साथ अनेक घटनाएँ घटित होती रहीं। एक घटना तो उन्हें भुलाए नहीं भूलती। वह बहुत ही दर्दनाक घटना है। उन दिनों उनके पड़ोसी वर्माजी की माँ की बीमारी में, नाजुक दशा हो आई थी। उन्हें देखने के लिए अनेक वैद्य-डॉक्टर आने लगे थे। उस समय उनमें से एक डॉक्टर ने कहा था, "इन्हें हॉस्पिटल ले जाना होगा, तभी वहाँ इनका ठीक ढंग से इलाज हो पाएगा।" लेकिन संयोगवश वह हॉस्पिटल उनके घर से बीस-पच्चीस किलोमीटर की दूरी पर था। वर्माजी की माँ को वहाँ ले जाना बहुत जरूरी हो गया था। लेकिन रामनरेश की गाड़ियाँ तो उन दिनों चुनाव के लिए 'सीज' की हुई थीं। इस समय वर्माजी ने उस अधिकारी से काफी प्रार्थनाएँ की थीं। लेकिन उनके कानों में जूँ तक नहीं रेंगी थी। वे अधिकारी मानव नहीं, पत्थरदिल इन्सान थे। तब किराये की गाड़ी लेकर ही वे लोग अस्पताल पहुँचे थे। समय पर इलाज न होने से वर्माजी की माँ का देहांत हो गया था। वह बेचारी सारे मोहल्ले में 'माँ-दुर्गा' की भाँति पूजी जाती थीं। इस कारण उनकी मृत्यु से सारा मुहल्ला ही दुखी हो गया था!

और एक दिन ऐसा भी आया, जब सरकार का कार्यकाल पूरा हो गया था।

तब राजनीतिबाज चौकन्ने हो गए। पार्टियों के उम्मीदवार, अपना-अपना नामांकन-पत्र भरने लगे थे। वैसे रामनरेश को पिछले चुनाव का बहुत कड़वा अनुभव था। इस बार उन्होंने सोचा कि क्यों न वह भी, अपना नामांकन-पत्र दाखिल कर दें? एक बार तो वे सोचने लगे कि अब तक उनके कुल-खानदान में, कोई भी नेता नहीं हुआ है। फिर वे कैसे चुनाव दंगल जीत पाएँगे? दो-चार दिन वे इसी प्रकार की दुविधाओं से ग्रसित रहे। फिर बहुत सोच-विचार के बाद उन्होंने भी चुनाव लड़ने का मन बना लिया। फिर केवल ढाई सौ रुपये देकर, उन्होंने अपना नामांकन-पत्र भर दिया। उधर, 'चुनाव आयोग' में यह निर्देश दिया था कि किसी भी उम्मीदवार के पास, तीन गाड़ियों से अधिक वाहन नहीं होने चाहिए!

फिर क्या था? इधर रामनरेश के कई मित्रों ने भी उन्हें चुनाव लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया था। उन्हीं के साथ-साथ दूसरे लोग भी, केवल अपनी गाड़ी बचाने के लिए ही अपने-अपने नामांकन-पत्र भरने लगे। इसका परिणाम यह निकला कि इनके शहर में ही सबसे अधिक चुनाव लड़ने वाले निकले!

नामांकन-पत्र भर देने के बाद से तो रामनरेश की कार धड़ल्ले से सड़क पर दौड़ लगाने लगी। अब चुनाव अधिकारी और पुलिस, उनकी गाड़ी को हाथ तक नहीं लगा सकती थी। जबकि पिछले चुनावों में अधिकारियों और पुलिस ने मिलकर, उनकी तीन गाड़ियाँ छीन ली थीं। तब उन्हें मन मसोस कर रह जाना पड़ा था। लेकिन आज वे मुस्कराते हुए उन अधिकारियों के आगे से अपनी कार ले जाते हैं। पहले यह होता था कि जब भी चुनाव का मौसम आता, वहाँ के विधायक उन्हें फोन कर गाड़ी की माँग करने लगते थे। अब ऐसी माँग करने वाला भी कोई न था। क्योंकि वे स्वयं ही चुनाव दंगल में उतरे हुए थे।

फिर आज जब कोई विधायक उन्हें गाड़ी के लिए फोन करता है तो वे गर्व से कह उठते हैं, "हुजूर, इस चुनाव में मैं भी खड़ा हूँ। मैं गाड़ी आपको कैसे दे सकता हूँ? मुझे खुद ही दो-चार और गाड़ियाँ चाहिए!" इस प्रकार के बोल, बोलकर वे अब किसी को गाड़ी देने या चंदा देने से बच जाया करते हैं।

अब जब रामनरेश की गाड़ी किसी सीनियर विधायक की गाड़ी के पास से गुजरती है तो वे हौले से मुस्करा देते हैं। फिर आजकल उनकी गाड़ी भी बची रहती है और वे ठाट से अपना बिजनेस भी करते हैं। अब इनकी गाड़ी को कोई पुलिस भी नहीं पकड़ सकती। अर्थात् उनकी गाड़ी इन दिनों पूरी तरह से सुरक्षित है। सचमुच आज वे 'गाड़ी बचाओ!' अभियान में पूर्ण रूप से सफल हैं। इस कारण रामनरेश को अनेक प्रकार के लाभ भी हो रहे हैं। देश-विदेश के टेलीविजन पर, पत्र-पत्रिकाओं में, उनके नाम का प्रचार मुफ्त में हो रहा है। फिर आज ऐसी मुफ्त की पब्लिसिटी को कौन नहीं चाहता है? इसके साथ-साथ इन्हें अनेक उद्योगपतियों

से ससम्मान चंदा भी मिल रहा है। इसके अलावा, विरोधी पार्टियाँ भी इन्हें 'चुप' रहने के लिए, अपनी-अपनी तिजोरियों का मुँह खोले हुए हैं। ऐसे में इनका पूरे पाँच साल का खर्चा-पानी भी निकल रहा है! इस कारण, आजकल वे सोचा करते हैं, "जो लक्ष्मी आ रही है, उसे आने दो। उसे आने देने में अड़चन नहीं डालनी चाहिए।" यही सब-कुछ सोचकर, रामनरेश नामांकन-पत्र भरकर निहाल हुए जा रहे हैं। अब तो नामांकन-पत्र भरना इनके जीवन का एक जरूरी काम हो गया है, क्योंकि चुनावी मैदान में उतरने से इन्हें फायदे-ही-फायदे हैं!

सजा-ए-नेतागिरी

रास बिहारी हमेशा देखा करते कि आज के नेताओं के हर प्रकार के ठाट-ही-ठाट हैं। उनकी जिंदगी का क्या कहना! शहंशाहों की तरह आराम फरमाया करते हैं। इशारा किया नहीं कि चीज हाजिर है। हर समय उनके तलुवे चाटने के लिए सैकड़ों आदमी उनकी राह में आँखें बिछाए रहते हैं। वे इस ताक में रहते हैं कि कब उन्हें, नेताजी की सेवा करने का अवसर मिले! नेताजी भी जब एक बार किसी की सेवा ग्रहण कर लेते हैं तो उसके बाद वे उससे दूर-दूर ही रहते हैं। उन्हें आशंका बनी रहती है कि न जाने कब, वह उनसे नाजायज फायदा उठा ले! कहने का अर्थ यही है कि नेता बनने से हर प्रकार से सुख-ही-सुख मिला करता है। ऊँची कुर्सी पर बैठा नेता जब विदेश जाता है तो वहाँ का विदेश मंत्री उसकी आगवानी के लिए तैयार रहता है। वहाँ की सैर वह सारी सरकारी सुविधाओं के साथ किया करता है। फिर विदेशों से अनेक प्रकार के कीमती उपहार भी तो उसे मिलते हैं!

सत्ता में आसीन नेताजी को पूरे पावर मिले हुए होते हैं। वे किसी को भी सरकारी, अर्द्ध सरकारी संस्थानों में नौकरी दिलवा सकते हैं! इन नेताओं के विरुद्ध कोई भी आवाज नहीं उठा सकता। सरकारी कर्मचारी तो हर समय उनसे डरा करते हैं। न जाने कब उनके विरुद्ध कमीशन बिठला दें! यदि आप उद्योगपति हैं तो नेताजी आपके उद्योग पर दस प्रकार के टैक्स लगा सकते हैं। ऐसे में आप तबाह भी हो सकते हैं। उद्योग बंद होने की स्थिति में आ जाता है। इसके अलावा यदि नेताजी रेल से या हवाई मार्ग से यात्रा करना चाहें तो सर्वप्रथम टिकट उन्हीं को दिया जाता है। क्योंकि वे देश के कर्णधार होते हैं। वे देश के लिए कुछ करते-धरते हैं या नहीं, इस पर बहस करने की गुंजाइश नहीं है!

रास बिहारी नेता और शराबी के जीवन में कोई अंतर नहीं समझता। आज के नेता चुनावी दंगल में हुए खर्च को वसूलने के चक्कर में रहा करते हैं। जनता तड़पती रहे, चीखती-चिल्लाती रहे, उनका इससे कोई लेना-देना नहीं होता। उनके कानों में जूँ तक नहीं रेंगती। वे तो पाँच साल के लिए इस अभागी जनता को भूल ही जाया करते हैं। उस समय जनता यदि मरती है तो मरा करे। वे तो एयर

कंडीशनों में रहा करते हैं। यह सब भाग्य की बात है। पाँच साल के बाद ही, नेताजी का नशा काफूर होता है। नये चुनावों में वह फिर से जनता को मूर्ख बनाने का प्रयास करने लगता है।

इसी प्रकार एक शराबी का नशा भी उस समय काफूर होता है, जब वह सारे महीने की कमाई को शराब में उड़ा चुका होता है। नशे के कारण उसका घर तबाह हो जाता है। फिर भी वह शराब पीना नहीं छोड़ता। इन दोनों में कितना सामंजस्य है! शराबी शराब न पीने की कसमें खाता है तो नेता जनता के सामने उनकी सेवा करने की कसमें खाया करता है। लेकिन जीत जाने के बाद वह अपनी सारी कसमों और वायदों को भूल जाता है। शराबी भी कसमें खाता है कि आगे से वह शराब नहीं पिएगा लेकिन दूसरे ही दिन वह शराब की दुकान में चल देता है।

एक बार रास बिहारी का दिल्ली जाना हुआ था। चूँकि वह वहाँ पहली-पहली ही बार गया था। इसलिए ये महानुभाव वहाँ की चकाचौंध को देखकर घबराने लगे थे। जिससे उसका दिमाग ही चकराने लगा था। वहाँ की ऊँची-ऊँची इमारतों, मीनारों और किलों को देखकर वह हैरत में रह गया। एक दिन घूमता हुआ वह लालकिले के पास चला आया। वहाँ उसने देखा कि दो आदमियों के बीच, जूते-चप्पलों से लड़ाई हो रही थी। उनमें से एक ने तैश में आकर प्रधानमंत्री को एक भद्दी-सी गाली दे डाली थी। वह बकने लगा था, "जीवनलाल भी यहाँ आ जाए तो मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।" इतना कहना था कि दूसरे आदमी ने यातायात को ही अवरुद्ध कर दिया था। वह बीच सड़क में पागलों जैसी हरकतें करने लगा था। वह भी चीखने-चिल्लाने लगा था, "भाइयो और बहनो! यह देखिए। ये मूर्ख हमारे प्रधानमंत्री को गालियाँ बक रहा है। आप सब देख रहे हैं। आप लोगों को भी शर्म नहीं आ रही है।"

इस पर वहाँ खड़ी सारी जनता जैसे मूर्ति बनकर उसे देखने लगी थी। जैसे कि उन्हें काठ मार गया हो! उसके बाद लोगों को होश आया और वे दौड़कर उस आदमी को मारने लगे थे। वे लोग उसे जान से ही मार देते, यदि ठीक समय पर वहाँ पुलिस न आ गई होती! भीड़ इकट्ठा करने वाले, उस आदमी से, रास बिहारी बहुत प्रभावित हुआ था। उसने तो नेता जैसा भाषण देकर, सबको अपनी ओर आकर्षित किया था!

एक सप्ताह तक दिल्ली में घूमने-फिरने के बाद, रास बिहारी अपने शहर के लिए ट्रेन पकड़ा। 'वैशाली एक्सप्रेस' के थ्री टायर में उसकी बर्थ थी। अपनी अटैची लेकर वह अपनी बर्थ पर पहुँच गया था। उसकी बर्थ के नीचे की बर्थ पर, किसी मंत्रीजी के निजी सचिव भी, उसी ट्रेन से यात्रा कर रहे थे। उनके मंत्रीजी हवाई जहाज से दूसरे दिन राँची पहुँचने वाले थे। वे सज्जन चूँकि मंत्रीजी के

सहायक थे इसलिए वे भी हवाई जहाज से जा सकते थे। लेकिन उन्होंने ट्रेन से ही यात्रा करने का कार्यक्रम बना लिया था। तभी उस कंपार्टमेंट में 'पेंट्री कार' का वेटर आया था। वह सभी यात्रियों से खाने-पीने का ऑर्डर लेने लगा था। मंत्रीजी के निजी सहायक ने उससे कहा, "हमें रात को दस बजे भोजन में अमुक-अमुक चीजें चाहिए। उसके बाद ग्यारह बजे पीने के लिए दूध चाहिए।" उनकी बातें सुनकर उस वेटर ने कहा, "ये सब कुछ नहीं मिलेगा। जो पेंट्री में तैयार है, वही मिलेगा।" इस पर वे निजी सहायक उस पर बिगड़ने लगे। उन्होंने कहा, "तुम्हारी जो पेंट्री कार चल रही है न, उसे हम बंद करवा देंगे। तुम्हारा हमारे साथ बदतमीजीपूर्ण व्यवहार रहा है। तुम्हारा मालिक किधर है? उसे बुलवाओ। हम उससे बात करेंगे।"

उस धौंस पट्टी को सुनकर बेचारा वेटर घबरा गया। उसने तुरंत ही इस बात की सूचना अपने मालिक को दे दी। कुछ ही पलों में दौड़ा-दौड़ा उसका मालिक उस कंपार्टमेंट में चला आया। उसने मंत्रीजी के निजी सहायक को पहचान लिया था। तब उनके पैरों पर पड़ते हुए, उसने निवेदन किया, "साहेब, मेरे आदमी से बहुत बड़ी गलती हो गई है। आप उसे माफ कर दें। आप जो भी चीजें चाहेंगे, वे सब आपको मिल जाएँगी।"

"ऐसी बात है तो ठीक है। हम माफ करते हैं। लेकिन...।"

"बिलकुल-बिलकुल। आप जो भी कहेंगे वो सब हाजिर कर दिया जाएगा।"

तब उस निजी सहायक ने अपने आस-पास के बर्थों वालों से पूछा कि वे लोग क्या-क्या चीजें मँगवाना चाहते हैं। इस प्रकार यहाँ से सारे ऑर्डर्स लेकर, पेंट्री मालिक वहाँ से चल दिया। उसके बाद सभी यात्रियों की खाने-पीने की चीजें वहाँ आ गईं। जब तक वह ट्रेन राँची नहीं पहुँची, वह पेंट्री मालिक उन निजी सहायक की चमचागिरी करता रहा। अंत में जाते-जाते वह फिर से गिड़गिड़ाने लगा, "हुजूर, वेटर की गलती को माफ कर दीजिए।"

"ठीक है। हम तुम्हारी सेवा से बहुत प्रसन्न हुए। हम तुम्हें माफ करते हैं।" यह कहकर वे निजी सचिव ट्रेन से नीचे उतर गए। उन्हीं के साथ-साथ रास बिहारी भी कंपार्टमेंट से नीचे उतर गया।

रास बिहारी घर आकर अपने परिजनों से मिला। वे सभी उससे दिल्ली जैसी महानगरी के बारे में पूछताछ करने लगे। तब उसने सबको दिल्ली की राम-कहानी सुना दी। सुनकर सभी आश्चर्यचकित रह गए। क्योंकि वे तो दिल्ली की तुलना, अपने शहर से कर रहे थे। उधर, रास बिहारी का मन व्याकुल रहने लगा। उसके दिमाग में रह-रहकर नेताजी की 'बादशाहत' की बातें ही घूमा करतीं। रात को वह खा-पीकर अपने बिछावन पर चल दिया। लेकिन उसकी आँखों से नींद कोसों दूर

थी। क्योंकि उसकी आँखों के आगे, नेताजी की छवि ही घूम रही थी। बड़ी रात गए उसे नींद आई तो उसमें वह सपना देखने लगा। वह नेता बना हुआ है। और उसकी सेवा में हजारों लोग लगे हुए हैं। वह सबको आदेश पर आदेश दे रहा है और सभी उसके आदेशों का पालन कर रहे हैं। सुबह होने पर जब वह सपना टूटा तो वह हाथ मलने लगा।

अब तो रास बिहारी दिन-रात नेता बनने के ही सपने देखा करता। इसके लिए उसने अपने लिए खादी के कई कुर्ते-पायजामे सिलवा लिये। लोगों को प्रभावित करने के लिए वह इधर-उधर जाकर लोगों के आगे डीगें हाँकने लगा। जब किसी आदमी पर कोई भूत सवार हो जाता है तो उसके इलाज में एड़ी-चोटी की कोशिश की जाती है, तब कहीं जाकर उसका भूत उतरता है! उसकी इन हरकतों को देखकर उसके पिताजी व बड़े भाई ने उससे कहा कि वह इस प्रकार की हरकतें न किया करे। यही नहीं, सतीश बाबू के साथ जो वह व्यापार कर रहा था, उसे भी उसने छोड़ दिया। सतीश ने भी उसे काफी समझाया, "तुम मन लगाकर व्यापार क्यों नहीं करते? शायद तुम्हारा मन ठीक नहीं है। ऐसे में तुम दुनिया का कोई भी काम ठीक से नहीं कर सकते?"

"लेकिन सतीश, तुम देख लेना। मैं एम.पी. या एम.एल.ए. जरूर बनूँगा।" रास बिहारी ने उससे कहा।

"अरे छोड़ो भी! खादी का कुर्ता पायजामा पहनने से कोई नेता नहीं बन जाता। तुम तो जिंदगी भर ऐसे ही कंधे पर झोला ढोते फिरोगे।"

सतीश के कहे में व्यंग्य था। तब रास बिहारी ने मन-ही-मन एम.एल.ए. या एम.पी. बनने की ठान ली। वह जहाँ भी जाता अंग्रेजी के आठ-दस शब्द लोगों पर रौब जताने के लिए कह दिया करता। फिर लोगों को प्रभावित करने के लिए उसके पास खादी का कुर्ता-पायजामा तो था ही। उससे लोग जल्दी ही प्रभावित हो जाया करते। इस प्रकार लोगों को प्रभावित करने के लिए उसने कई प्रकार के नाजायज काम किए। उनके सफल होने पर वह बहुत खुश हुआ। वह मन-ही-मन कहा करता, "अब नेता बनने के सारे गुर और गुण मैंने सीख लिये हैं।" इसके अलावा वह आसपास के लोगों और नेताओं से भी संपर्क बढ़ाने लगा। कहीं-कहीं तो वह बड़े नेताओं के लिए चंदा उगाही का काम भी किया करता। ऐसे में वह नेता भी उससे काफी प्रभावित होता।

कुछ दिनों बाद रास बिहारी थोड़ा साहस बटोरकर, स्टेज के कार्यक्रमों में भी भाग लेने लगा। जैसे ही नेता बाहर से आते, वह उनके पीछे नतमस्तक होकर खड़ा रहता। वह उनके आगे-पीछे चमचागिरी करने में ही लगा रहता। उसकी इस कर्तव्यनिष्ठा से नेता लोग प्रभावित होने लगे। यह देखकर कोई नेता कहता, "यह

लड़का हमारी पार्टी के लिए बहुत मेहनत कर रहा है।" कोई कहता, "इसे देखकर मैं खुश हो जाता हूँ।" कोई कहता, "ऐसें कर्मठ कार्यकर्ता को अगले चुनाव में, टिकट अवश्य देना चाहिए।"

लेकिन तभी रास बिहारी के शहर में देश के प्रधानमंत्री जीवनलाल का दौरा हुआ। उस समय चुनावी माहौल था। इसलिए नेता लोग यहाँ आकर चुनावी कार्यक्रम बनाया करते। प्रधानमंत्री का विरोधी दल भी उस शहर में प्रचार के लिए चला आया था। तब किसी नेता ने माइक रास बिहारी को थमा दिया। वह प्रधानमंत्री के विरोध में नारे देने लगा, "प्रधानमंत्री जीवनलाल–मुर्दाबाद! बैक वर्ड को आरक्षण दो, नहीं तो अपनी गद्दी छोड़ दो।" इस प्रकार के जोशीले नारे वह उछालता ही गया। तभी पुलिस की जीप आई और रास बिहारी को स्टेज पर से खींचकर पीटती हुई पुलिस थाने ले गई। जहाँ उस पर हंटरों से मार पड़ने लगी। जिससे उसका सारा शरीर ही फट गया। इस समय तक पुलिस ने उसके हाथ-पेर तोड़ डाले थे। उसने सोचा था कि उसके जोशीले नारों से लोग उसके पक्ष के हो जाएँगे और उसे अपना नेता मान लेंगे। इससे भविष्य में उसके नेता बनने का सारा रास्ता साफ हो जाएगा। पर ऐसा नहीं हुआ। इस समय उसका सारा शरीर मारे दर्द के टूटने लगा था। तब उसे अस्पताल में भर्ती करवा दिया गया, जहाँ महीनों तक उसका इलाज चलता रहा।

लगभग तीनेक महीने बाद ही रास बिहारी ठीक हो पाया था। उसके बाद नेता बनने के लिए उसने हमेशा के लिए तौबा ही कर लिया। फिर तो एक दिन, उसने सारे परिजनों के सामने कान पकड़कर कहा, "अब मैं भविष्य में कभी भी नेता बनने के चक्कर में नहीं रहूँगा। भगवान स्वयं भी आकर मुझे चुनाव के टिकट क्यों न दे दे, फिर भी मैं इस चक्कर में कभी भी नहीं पड़ूँगा!"

दरबार हाजिर है!

मणिबाबू आज बहत्तर वर्ष के हो गए हैं। इनकी अपनी एक चाय की फैक्ट्री है। जो भारत ही नहीं बल्कि विश्व के कोने-कोने में प्रसिद्ध है। यही कारण है कि प्रतिदिन ढेर सारे व्यक्ति उनसे मिलने आते हैं। जिसमें कुछ व्यापारी रहते, कुछ सामाजिक व्यक्ति एवं कुछ नेता होते हैं! चूँकि मणिबाबू का स्वभाव बहुत सरल एवं दयालु है, इसलिए हर आदमी इनसे मिलने जरूर आता! व्यापारी भी इन्हें ही खोजता, क्योंकि लिमिट से माल मिलने के कारण दूसरा 'डायरेक्टर' माल नहीं बढ़ाता और ये लिमिट से ज्यादा माल बढ़ा देते। इस समय ये सोचते हम व्यापार करने बैठे हैं तो माल अगर बढ़ा देते हैं तो कौन-सी गलती करते हैं? इन्हीं सब कारणों से व्यापारी भी, प्रायः इन्हें ही खोजता रहता है।

एक बार का वाकया है कि मणिबाबू कहीं बाहर गए हुए थे। इन्हीं दिनों एक व्यापारी माल लेने के लिए 'चालान' लेकर, इधर-उधर घूम रहा था। वह आफिस खुलने के बाद से लेकर, शाम तक मणिबाबू की प्रतीक्षा में बैठा रहा लेकिन वे उस दिन नहीं आए। तब वह व्यापारी निराश होकर फर्म के एक दूसरे 'डायरेक्टर' के पास अपना चालान पास कराने गया। फिर अपने स्वभाववश, उनसे माल बढ़ाने का आग्रह किया लेकिन इस 'डायरेक्टर' महोदय ने एक पीस भी माल नहीं बढ़ाया। तब वह व्यापारी आक्रोशवश बोल पड़ा—"अरे मणिबाबू, अभी नहीं हैं, इसलिए मैं आपके पास आया हूँ। अगर वे रहते तो हम यहाँ आते भी नहीं!" यह बात सामने बैठे, इस युवा 'डायरेक्टर' को काफी चुभ गयी, जिससे वह अपना एक लम्बा-सा फरमान निकाल दिया—"अब से आप किसी भी चालान में एक पीस भी माल नहीं बढ़ाएँगे, चाहे पार्टी गिड़गिड़ाते हुए मर ही क्यों न जाए?" लेकिन पहला दिन बीता, दूसरा दिन बीता, तीसरा दिन बीता और चौथे दिन से पुनः मणिबाबू अपने स्वभाव के वशीभूत होकर व्यापारी के अधिक माँगने पर, 'चालान' में माल बढ़ाने लगे। यही कारण है कि इनके टेबुल के आगे दाएँ-बाएँ की कुर्सियाँ भरी रहतीं। लोग यहाँ अपना काम कराने आते लेकिन इस तरह बैठ जाते, जैसे यहाँ रामायण या गीता का उपदेश सुनने आए हों। फिर ये भला बैठेंगे

क्यों नहीं? उन्हें अपना काम जो कराना है? इसलिए उन्हें तो बैठना ही पड़ेगा। यही वजह है कि इनका दरबार हमेशा लगा रहता है। इनके सामने समय का कोई महत्त्व नहीं है? जबकि विदेश घूमते समय इन्होंने देखा था कि यहाँ के लोग अपने समय को कितना महत्त्व देते हैं। इस अवसर पर इन्होंने मन-ही-मन, यह प्रण भी कर लिया था, अपने समय का ये सदा सदुपयोग करेंगे तथा अपने चैम्बर के आगे 'नो एडमीशन विदआउट परमीशन' भी लिखवा देंगे! लेकिन यहाँ आकर इनके विदेश की यह बात विदेश में ही रह गयी! फिर अपने आदत के अनुसार कोई आदमी उनके पास आता है तो उन्हें ये जबर्दस्ती पास बिठाकर, चाय-नाश्ता कराते और घंटों गप्प में मशगूल हो जाते हैं।

मणिबाबू अपने चैम्बर में बैठे हुए थे, तभी दिनेश बाबू उनसे मिलने आते हैं। अपने आदत के अनुसार, ये तुरंत ही अपने पिअन से कहते हैं—"अरे बैजू! दिनेश बाबू के लिए, जल्दी से चाय-नाश्ता लाओ!" यह कहकर वे उनसे बातचीत करने लगते हैं। जबकि इनके अलावा और भी लोग वहाँ पर बैठे हुए, इस आशा में थे कि अब मेरा काम होगा और मैं यहाँ से भागूँगा लेकिन क्या मजाल कि उसे जल्दी छुट्टी मिल जाए?

"दिनेश बाबू! कहऽ नऽ की समाचार हओ? अभी तऽ तोहर नोकरी बचले होतओ कि रिटायर कर गेला?"

"अब तऽ इ-तीन साल बचले हए!"

"आएँ हो, तोहर जे एगो बेटा 'इनकम टैक्स' में काम करइत रइओ से कहाँ होओ?"

"उ तऽ 'पटना' में हई!"

"कौन वार्ड में हओ?"

"वार्ड नम्बर 'ए' में परइत हई।"

"हम पिछला बेर 'पटना' गेली तऽ, ओकरा से हमर भेंट न भेल।

"पटने में तऽ हई उ। अच्छा हम कह देब अपने से भेंट करलेत।"

"हाँ, कह दीह! हमरे न 'इनकम टैक्स' जाय के परइअ। परिचय बात तऽ रहे के चाही नऽ?" तब तक उनका पिअन नास्ता, चाय लेकर, उनके टेबुल पर रख गया था और दिनेश बाबू नाश्ता कर, चाय पीने लगे थे। तभी मणिबाबू सामने बैठे एक नेतानुमा आदमी से बोले, "हो सरयुग बाबू! कह की समाचार हओ।'

"की समाचार रहतई। अबकी बेर हम चुनाव लड़ रहल हती। अपने के तनिक मदद करे परत। कम से कम बीस-पचीस हजार रुपइआ तऽ मिलही के चाही। अपने सब के बल-बूता पर हम लड़ रहली ह?"

"ठीक हई। बाकी हमरा तऽ आगे पीछे सोचे के परइअ।'

"बाकी हम तो अपने के खास आदमी हती। हमरा तऽ विशेष मदद करे के होएत।"

"से तइ ठीक हई बाकी एतना तऽ न होएत।" यह कहकर, मणिबाबू पुनः दिनेश बाबू को इंगित करते हुए बोल पड़े, "हाँ हो दिनेश बाबू केन्ने चलला ह।"

"मणिबाबू! हम नया साल में डायरी, कलेण्डर और झोला के लेल चललीं र!"

"अच्छा-अच्छा!" यह कहकर वे तुरंत सारे सामान का एक पुर्जा लिखकर, अपने पिअन को लाने के लिए देते हैं। फिर ये तीसरे व्यक्ति को इंगित करते हुए कहते हैं, "हो रमेश बाबू! कहा की समाचार हई। एला तो ढेर दिन से, तू मिलबो न कएल ह। कहई बाहर गेल रहल ह की?"

"न, बाहर हम कहाँ गेली ह! हम की कहूँ आपन बात। हमरा मेहरारू के तो 'कैन्सर' न हो गेलह। हम ओही में बड़ा परेसानी में हली। की करू, कुछ समझ में न आवइअ। महँगाई जो तऽ बढ़ गेल हए। एमे दस-दस आदमी के केना गुजारा होएत। इहे सब कारण से हम, अपने के पास चलली ह!'

"हाँ हो, महँगाई तइ बढए गेलई, बाकी की करेके, ऐही में न सब करे-धरे के हई।"

"यही सब बात लेके तऽ अपने के पास अइली ह।"

"कह की बात हओ?"

"हमर बेटा 'आई.ए.' पास कएलक ह, ओकरा अपने फार्म में कोनो नोकरी दे दीऊ।"

"अखनी के युग में सर्विस मिलना तऽ बड़ा मुश्किल हई!"

"अरे, अपने तऽ राजा हथी। हमर बेटा के कोनो काम दे देवई तइ उ मोसतेदी और इमानदारी से करेत। हमरा लड़का बड़ा मेहनती हए। एक बेर ओकरा कोनो काम दे के तऽ देखू!"

"देखा भाई, अगर कही जगह हो तो, तो हम तोहर बेटा के जरूरे रख लेवओ, इ बात के तू चिन्ता न करा!"

"यही कहे ता तो हम, अपने के पास अइली ह। अच्छा त हम चलइत हती।"

"ठीक है, रमेश बाबू नमस्ते!" फिर रमेश बाबू अपनी कुर्सी से उठकर चल दिए। इसी बीच महेन्द्र बाबू आकर बोले, भइया प्रणाम। कह सामने वाल कुर्सी पर बैठ गये।

महेन्द्र बाबू कल तक तो मणिबाबू के ही महल्ले के एक पड़ोसी थे। अब चूँकि मणिबाबू ने दूसरी जगह अपना मकान बना लिया है, फिर भी ये अपने

पुराने पड़ोसी को अब तक नहीं भूले हैं। आज भी उनसे उसी स्नेह भाव से मिलते-जुलते एवं उनका समाचार लेते रहते हैं। तभी ये एकाएक इनसे पूछते हैं–

"की हो महेन्द्र बाबू, समाचार ठीक हओ नऽ!"

"ठीक हई भइया!"

"हो मिन्तु बाबू के की समाचार हई। दुर्गापूजा में तोहरे के उ 'हेड' बना देलथुन।"

"हाँ भइया! पूजा में तो सब हमरे करके परइछई। हम इतना करेली फिर भी बदनामी हो जाइले!"

"उ तऽ होएव करेसई, आखिर जे काम करतई ओकरे से तऽ गलतिओ होतई, जे काम नऽ करतई, ओकरा से की गलती होतई?"

"ठीके कहइत हता भइआ!"

"आओर सब ठीक हई नऽ। तोहर छोटका भाई रमन के की समाधार हओ। ओकर किराना के दूकान चल रहल हई कि नऽ!"

"ठीके चल रहल हई भइआ!"

"आ 'शमशूल मास्टर' के की हाल हई। उनकर 'टेलरिंग के दूकान कइसन चल रहलई हऽ?"

"खूब चल रह लई! अब तऽ खूब निम्मन से अपन दोकान बना लेलक ह!"

"हँऽ!"

"भइआ! हम अइली र एगो गाड़ी लेबे के लेल। हमरा बेटी के विहान् शादी हई!"

"तोहरे बेटी के!" आश्चर्य से मणिबाबू पूछते हैं।

"हाँ भइआ!"

"गाड़ी के तऽ बड़ा मुश्किल हई!"

"न-न भइआ। गाड़ी तऽ तोरा देवही के हओ!"

"देखऽ कोनो इन्तजाम करइले, कए बजे तोरा गाड़ी चहिअओ!"

"छ बजे साझ के चाही!"

"तू इ घंटा में गाड़ी के छोड़ देवऽ?"

"ठीक हई भइआ।"

"तू जा। हमरा चार वजे साँझ के फोन करके इआद करा दिह। तव हम तोरा पास छः वजे गाड़ी भेजवा देव, बाकी आठ बजे ले तोरा गाड़ी छोड़ देवे के होतओ। आठ वजे 'इनकम टैक्स' कमीशनर के इहाँ गाड़ी जाए के हई!"

"हाँ भइआ। एकदम छोड़ देब। हमर काम हो जेतई तऽ, हम काहेला गाड़ी रखवई। तोरा पास एकदम आठ बजे ले गाड़ी पहुँच जतओ!"

"ठीक हए जो निश्चिन्त से, बेटी के शादी के तइआरी कर जाके?"

"भइआ तू आ रहलू ह नऽ!"

"अरे कि कहिअऊ, हमरा तऽ मरे के फुरसते न हए, बाकी जो, हम जरूर आएब!"

"आवे के तोरा जरूर होतओ। तोहर बेटी के शादी हओ, औ तू न रहबा तऽ कइसे होतई? कार्डो तऽ हम इ-तीन दिन पहिले, तोहरा घरे पर दे देलिअओ हा। तोरा तऽ मिल गेल होतओ!"

"हँ, कार्ड तोहर मिल गेलाऊ हा!"

"ठीक हए भइआ। अइए जरूर। बेटी के शादी में! हम अब चलइले, इरो पर त देख-रेख करके हए। प्रणाम!"

"प्रणाम-प्रणाम!" फिर महेन्द्र बाबू अपनी कुर्सी से उठकर, मणिबाबू से विदा लेकर चल देते हैं। तब तक मणिबाबू के पास, उनका पिअन ढेर सारा बिल 'साइन' करने के लिए रख जाता है। जिस कारण ये बिल में लगातार 'साइन' करने लगते हैं।

इधर नेताजी सरयुग बाबू, बैठे-बैठे मणिबाबू की सारी 'एक्टीभीटी' देखते रहते हैं। फिर नेताजी को यहाँ आए, चार-पाँच घंटा भी हो चुका था। इस कारण वे बैठे-बैठे काफी बोर भी होने लगे थे। तब एकाएक ये मणिबाबू से बोले, "मणिबाबू, हमरो इन्तजाम करू न। हमहु चलेव!"

"देखा, चंदा देवे के काम, अब हमरा हाथ में न हए। अब लड़का-फड़का के जमाना आ गेलऽ ह। ओकरे से हमरा पूछेके परतई। तब जाके हम तोरा सब के देवओ!"

"ठीक है तो एकरा में की हई। लरिका से पूछ लू। बाकी हमरा पर थोड़ा ख्याल रखब।" यह सुनकर मणिबाबू पूर्ववत् अपने बिल में 'साइन' करने लगे। इस बीच एक-दो व्यापारी, जो उनके सामने बैठे थे, वह अपना पेमेन्ट दिखाकर बिल भी ले लिये थे, ताकि वे अपना माल यहाँ से ले जा सकें! जब एक घंटा से भी ज्यादा समय बीत गया तो नेताजी पुनः उनसे बोले, "मणिबाबू! हम अब चलब, हमरा के छुट्टी दीऊ!"

"ठीक है एमे हम की कर सकइले। रमेश और सुरेश से पूछ लेव। उ सऽतऽ बम्बई में हए। एक दो हफ्ता में आवे वाला हए। हम ओकरा से पूछ लेव, जे कहतओ से तोरा मिल जतओ!"

"तब हमर इलेक्शन के की होएत?"

"तऽ हमरा की कहइत हतऽ। हम तऽ पूछिए के न देबओ, न तो हमरे छुट्टी हो जाएत!"

"ठीक है, अपन के जे बुझाए, से ही दे दीऊ।"

"हमरा कहवा तऽ हम्मर पावर सौ-पचास रुपया के हए। तू कह तऽ सौ-पचास रुपया तोरा के दिलवा दीऊ।"

"इ न करऽ मणिबाबू। हम पचीस हजार सोच के चलली ह। आ तू सौ-पचास रुपया पकड़ा रहलहऽ। कम से कम हमरा दस हजार तो दिलवा दऽ!"

"देखाऽ, सरयुग बाबू! हम पहले ही तोरा कह देलिओ ह कि इ काम हमर पावर से बाहर के हए। तोरा पचीस हजार चाहिए तऽ, हम पूछ लेब, फेरू तू ले लीह। हमरा देवे में कोनो एतराज न होएत। हमरा पचास हजार के परमीशन मिल जाइ तऽ, हम पचास हजार दे देब। ओकरा में हमरा की लगत।" यह सुनकर सरयुग बाबू का धैर्य का बाँध टूट गया था। वह मजबूर होकर बोले, "ठीक है मणिबाबू, अपने के जहाँ ले उचित समझू, ओतने दे दीऊ। अब हम चलेव!"

"ठीक है।" यह कहकर, मणिबाबू घंटी बजाते हैं। पिअन उनके पास आ जाता है, एक छोटा-सा कागज का टुकड़ा देते हुए बोले, "एक सौ एक रुपया लाकर दे दो?"

"कितना दे रहली ह!"

"एक सौ एक रुपया!"

"की कर रहली हऽ अपने!"

"हमर जेतना पावर हई, उतने न हम करब!"

"न...न...हम सौ-दो सौ रुपया लेकर की करब। एकरे से 'इलेक्शन' कइसे लड़ सकली ह!"

"खाली तू ही तऽ न हतऽ। हमरा तऽ सबके देखे के हए। उ देखा सोझा में प्रकाश जी बैठल हतून, इनकरो तऽ देवही के होएत!"

"से तऽ ठीक हई। वाकी एतना कम से की होतई। जातो गमइली भातो न खइली!" यह सुनकर मणिबाबू पुनः अपने फर्म के बिल पर 'साइन' करने लगे। आधा घंटा 'साइन' करते-करते वीत गया। तब सरयुग बाबू बोले, "हमरो इजाजत ह न मणिबाबू?"

"कहातऽ, एक सौ एक रुपया दिलवा दिअओ!"

"न...न!"

"ठीक है, एक सौ एकावन रुपया दिलवा देईलओ, एमे काम चलावा!" यह कहकर मणिबाबू एक सौ एकावन रुपये का, एक पुर्जा लिखकर, अपने पिअन को पैसा लाने के लिए दे दिया। "नाश्ता-पानी कएलऽ की न?"

"हाँ-हाँ करली ह।"

"अरे बैजू, इकरो ला चाय-नाश्ता ले आ।"

"न-न हम करली ह न!"

"अच्छा चाय पीअ। बैजू इ कप चाए ला!" तब तक दोसर पिअन आके, एक सौ एकावन रुपया दे गया था। रुपया पाते ही वे बोले, "अच्छा तऽ हमरा के छुट्टी इ!"

"चाय न पिबा?"

"न...न...!" वह उठा और 'प्रणाम' करते हुए चला गया। हालाकि वह नेता पचीस हजार के उम्मीद करके आया था। कम मिलने पर भी, मणिबाबू के व्यवहार से खुश होकर वह चला गया।

पूर्व की तरह मणिबाबू बिल पर साइन करने में लीन हो गये, कुछ देर बाद उनकी नजर नौकर पर पड़ी। वह पास आकर बोला, "मालिक प्रणाम!"

"किधर अएल ह? हाल चाल ठीक हए न?"

"ठीक हई मालिक...थोड़ा धान के बिआ लेवे के हए न!"

"कतेक धान के बीआ लगा रहले ह?"

"हमर विचार हए सब खेत में धान लगा दूँ!"

"इ चार कठ्ठा दोसरों चीज लगावे ला जमीन छोड़ दीहे!"

"न...न मालिक। अच्छा होतई कि सबमें धाने लगा देतिअइ!"

"ठीक हए, पूरा खेत धान लगा दे!"

"यही लेल तऽ अपने से मिले आएल रहली ह।"

"पाँच हजार रुपया चाही। धान के बिआ लेवे के हए। खेत तइआर हई।"

"अच्छा ठीक हई अभी तो पैसा न हऊ। एक हजार रुपया ले, काम कर, फेनू मिलिहे!"

"न...न...मालिक, एक हजार से की होतई। हम केकरा-केकरा के देवई। खेती, खेत, जोताई आ बीज सब केना होतई!"

"जो, फेनू मिलिहे, अखनी काम करे दे!"

"मालिक, अपने ही कहेव कि खेती बढ़ियां से न भेल। खेती करावे के हए तव, इ हजार रुपया आऔर देवे के होएत!"

"अच्छा जो, एक हजार आओर ले ले।"

"मालिक-मालिक!"

"जो हमरा काम करे दे?" यह कहकर सामने बैठे हुए एक व्यापारी आलम साहेब, जो रानीगंज से आए हुए थे, उनको इंगित करते हुए उन्होंने कहा, "क्या बात है आलम साहेब? बहुत दिन के बाद आप यहाँ आए हैं। एक बार आपके यहाँ 'उर्स' के मौके पर हम गए हुए थे! क्या आप लोग 'उर्स' मनाते हैं! वाह जवाब नहीं। हम हिन्दुस्तान के हर क्षेत्र में घूमे हैं लेकिन आपके यहाँ जो 'उर्स'

होता है, वैसा कहीं भी हमने नहीं देखा है!''

''सो तो है मणिबाबू! हम लोग 'उर्स' आने के पूरे तीन महीने पहले से ही, इसकी तैयारी शुरू कर देते हैं। तभी तो 'उर्स' पर ऐसा सुन्दर जलवा होता है कि लोग देखते ही दंग रह जाते हैं!''

''बिल्कुल ठीक कहते हैं, आप लोग जरूर पहले से तैयारी करते होंगे, तभी तो...।''

''मणिबाबू! आपको सुनकर ताज्जुब होगा कि हमारे इस 'उर्स' के मौके पर, दो-तीन प्रांत के राज्यपाल, इस मेले का उद्घाटन करने आते हैं। इसके साथ-साथ देश-विदेश से भी लोग, इस 'उर्स-मेले' को देखने आते हैं!''

''अच्छा, वही तो हम कहे कि इतना भव्य कैसे होता है? और कहिए क्या समाचार हैं?''

''ठीक है मणिबाबू! मेरे माल का लिमिट बहुत कम है और दिन पर दिन जनसंख्या बढ़ती जा रही है, फिर भी मेरा लिमिट जो पन्द्रह साल पहले बना था, वही आज भी है। उसमें थोड़ा भी 'सुधार' नहीं हुआ है सो...!''

''सो तो ठीक है लेकिन लिमिट का काम अब हमारे हाथ में नहीं है। इसके लिए आप रथ बाबू से मिल लीजिए, वही यह सब देखते हैं। ऐसे आप माल लेने आए हैं तो लाइए हम चालान में कुछ बढ़ा देते हैं!''

''सो तो ठीक है लेकिन पन्द्रह साल से...!' यह कहकर वह व्यापारी अपना माल लेने वाला चालान उनके आगे बढ़ा दिया। वे चालान को देखते हुए पूछने लगे, 'हाँ बोलिए आलम साहेब! क्या बढ़ाना है?''

''यही बड़ा दो हजार और छोटा चार हजार डिब्बी बढ़ा दीजिए।''

''इतना कैसे बढ़ेगा, फिर भी हम कुछ बढ़ा देते हैं। यह लीजिए बड़ा पांच सौ और छोटा एक हजार!''

''इतना से केसे होगा मणिबाबू! फिर आपका 'ईद' भी सामने है!''

''अच्छा लीजिए बड़ा सात सौ, छोटा डेढ़ हजार बढ़ा देते हैं!''

''इतना में मेरा काम नहीं चलेगा मणिबाबू। मैं पन्द्रह साल से यहाँ नहीं आया। अब आया भी हूँ तो आप हमें पूरा माल नहीं दे रहे हैं। हम भला मार्केट में, बिना माल का क्या करेंगे?''

''अच्छा, आप क्या चाहते हैं?''

''ऐसा कीजिए बड़ा एक हजार और छोटा ढ़ाई हजार कर दीजिए, हमारा काम चल जाएगा!''

''न...न इतना तो नहीं होगा! खैर लीजिए बड़ा एक हजार और छोटा दो हजार कर देते हैं!''

"ठीक है!" यह कहकर, वह पार्टी चाय और नाश्ता कर, अपना माल लेने के लिए 'पैकिंग सेक्सन' में चल देती है। फिर मणिबाबू सामने बैठे एक दूसरे व्यक्ति से बात करने लगते हैं, जो उनके फर्म का गाड़ी बनाने का बिल लेकर आया हुआ था। उसे देखकर कहने लगे, "हाँ बोल मुन्ना, कहाँ चलले ह!"

"बस अपने पास ही चलली ह! आज हमरा हाथ बहुत खुजलाइत ह!"

"देख तोहर काम अभी न होतऊ?"

"अइसन कैसे होतइ मालिक! 'ईद', तीन-चार रोज बादे हइ। केना काम चलतई?"

"ठीक हए, रख अभी। दूसरों के पेमेण्ट करे के हई। इधर कम्पनी से पेमेण्टों न आ टहलई ह, बड़ी मुश्किल से आजकल काम चल रहलई ह।"

"बाकी हमरा तऽ चाही न, अगर न मिलई तऽ हमर परव कइसे होतई?"

"देख ज्यादा जरूरी हऊ तऽ, विहान सवेरे मिलिए। जे होतऊ से कर देबऊ?"

"ठीक हई, प्रणाम!"

"प्रणाम...प्रणाम!" मणिबाबू पुनः अपने बिल में 'साइन' करने लगते हैं।

मणिबाबू के ठीक दायीं ओर की एक कुर्सी पर प्रकाश जी बैठे हुए थे। जिनकी उम्र आज सत्तर-पचहत्तर होगी। हालाँकि ये एक दिन के लिए, इस प्रांत के 'चीफमिनिस्टर' भी बन चुके हैं। फिर भी इनका 'इलेक्शन' लड़ने का जोश-खरोश अभी तक बरकरार है। वैसे ये मणिबाबू के हमउम्र एवं परिचित भी हैं, इसलिए कभी-कभी बीच-बीच में, ये दोनों अपने-अपने सुख-दुख की बात भी कर लेते हैं। यही कारण है कि आज ये सुबह ऑफिस खुलने के बाद से लेकर, अब आफिस बंद होने को आ गया है, फिर भी ये जमे हुए हैं। तभी प्रकाश जी मणिबाबू को बिल पर साइन करते हुए देखकर, उनकी चुप्पी को तोड़ते हुए कहते हैं, "अपने के बहुत मेहनत करे के परइअ!"

"की करू, सब काम तऽ हमरे करे परइअ। हमरा छोड़के सर देखे-करे वाला न हई?"

"मणिबाबू, जे परिवार के 'गार्जियन' होईअ। ओकरा माथा पर बहुत वजन रहेवे करसई।"

"ई तू ठीक कहला ह।"

"अब हमरे देखा न। सभे बाल-बच्चा के पढ़ा देली, लिखा देली बाकि की कहूँ। आजो ले घर में राई से लेके शादी विआह ले, सभे हमरे करेके परइअ!"

"ठीके कहइत हतऽ हमरो तऽ उहे हाल हए। बेटा बड़ा होगेल ह, ओकर शादिओ ब्याह सब कर देली, तइओ सब हमरे करेके परइअ।"

"कि करव मणिबाबू, ई सब जमाना के दोस हए। हम सब जब जवान भेली तऽ, अपन बाप-मतारी के एगो भी कहना न टारत रहली। हम अपना माय-बाप से खूब डरतो रही बाकी अब तऽ जमाने बदल गेलई। ऐने फिलिम-टीवी जे संस्कृति बचल रहई, उ सबके गुड़-गोबर कर देलकई!"

"ठीके कहइत हतऽ प्रकाश बाबू!" अचानक मणिबाबू की नजर सामने टंगी हुई दीवार घड़ी पर पड़ी। वे बोले, "हो, नौ बज गेलई, बइठल-बइठल किच्छो पते न चलक। बड़ा देर हो गेलक आफिसों बंद करे के होतई।"

"हुँ नौ बज गेलई?" आश्चर्य से प्रकाश जी अपनी घड़ी को देखने लगे।

"ठीक है!" उन्होंने अपने पिअन को बुलाकर कहा—"ई ले हमर बेग गाड़ी में रख दे। आफिस बंद कर, चल...।"

वह उनका बेग लेकर, सीढ़ी से नीचे उतरा और उनकी गाड़ी में रख दिया!

मणिबाबू एकाएक उठकर खड़े हो गए।

"अच्छा हो, अब हम चलइले।"

"मणिबाबू, हमर काम तऽ नहिए भेल!"

"विहान अइह काम हो जतई!"

"ठीक है!" यह कहते हुए मणिबाबू 'चैम्बर' से बाहर निकल गए। फिर सारे आये लोग उनके पीछे चल दिये। ऐसा लगा कि विधानसभा का 'सेसन' अब खत्म हो गया है! लोग विदा होने लगे। इस समय जो लोग बच गए थे, उनसे इन्होंने पूछा, "कहाँ जइवा। घंटाघर चले के हाओ तऽ आ जा, हमरे गाड़ी में, आगे उतर जइबा!"

दरबारी लोग, उनके गाड़ी में आकर बैठ गए! गाड़ी चल पड़ी। शर्माजी सरस्वती पूजा वाली घटना को याद कर कहने लगे, "उस दिन मणिबाबू, अपने के 'आँख के शिविर' में डॉक्टर के साथ, रोगी के सेवा में लगल रही। इहे कारण ओह दिन, अपने के आफिस में न अइली र। तब अपने के इंतजार में शहर से आएल व्यापारी और सरस्वतीपूजा के चंदा माँगे वाला लोग, सुबह से शाम ले, बइठल रहई। अपने के कार अन्दर जैसे आएल, तऽ चंदा माँगे वाला लोग, एकाएक दउर पड़ल। उ दिन तो भीड़ अतेक रहे कि कार के आगे कई लोग आ जाइत र। बाकी ड्राइवर होशियार रहे, यही से किच्छो न भेल। फिर अपने के जैसे ही कार से उतरली, लोग 'प्रणाम' करे लगल। ई दृश्य देख के हमरा लगल कि अपने के कोनो बड़का नेता छी। उस दिन सौ-पचास देके सबके अपने विदा कर देलिअई। हालाँकि एतना से बहुत कमें लोग बात मानते रहल।"

इस बीच कई लोग गाड़ी से उतरकर घर चले गये। तब गाड़ी में सन्नाटा छा गया। तभी चुप्पी तोड़ते हुए सुशान्त जी बोले, "उस दिन आपकी शादी की

पचासवीं वर्षगाँठ पर जो समारोह मनाया गया था, उसमें तीन हजार से भी ज्यादा आदमी आये थे!''

''हाँ, ठीक कहलाऽ, तीन हजार से कम की होतई!''

''मणिबाबू, समारोह में अपने तऽ इंतजामें बढ़ियाँ से करले रही! एगो बात कहिअओ!''

''कोन बात!''

''वर्षगाँठ में हमरा वर्षों बाद, एहन आदमी से भेंट भेल, जे हम समझलीर कि अब तक मर गेल होएत!''

''ठीक इआद दिलेएला हो सुशान्त जी! एहन भोज कहियो न देखली र। ओह दिन देख के हम धन्य-धन्य हो गेली!''

''ओह दिन तोहर बेटी, दमाद, बेटा, पूतोह, पोता, पोती, नाती, नतनी, सब के सब घेर के बैठल ग्हल। बुझाइत रहे कि शादी कर रहली र। भाभी ओभी कुमारे बुझाइत रहथिन!''

''सच में सुशान्त बाबू!'' यह सुनकर मणिबाबू के साथ-साथ, सारे लोग खूब जोर से हँस पड़ते हैं। तभी मणिबाबू का घर आ गया था। फिर ये अपनी गाड़ी से उतरकर, अपने गलियारे में जाने लगे, जहाँ दो-तीन आदमी इनके इन्तजार में लगभग डेढ़-दो घण्टे से बैठे थे। मणिबाबू को वे लोग देखते ही, 'प्रणाम-प्रणाम' कहकर, बगल की कुर्सी पर बैठ जाते हैं। बात-चीत के दरम्यान लोगों ने कहा, 'हर मुहल्ले में, इतनी चोरी-डकैती एवं असुरक्षा की भावना हो रही है, इसके लिए हमलोग,एक 'नगर सुरक्षा समिति' बना रहे हैं, जिसमें हर वार्ड में, इस समिति का, एक-एक आदमी होगा। इसके लिए 'फंड' इकट्ठा करना है। भइया तोहरे पर सब दावेदार हओ। जेतना हो सके ओतना दहू ताकि नगर की सुरक्षा हो सके!''

''एहन तऽ हमहु चाहइत हती!''

''भइया, तोरा दस हजार रुपया देवे के होतओ।''

''देखऽ ऐहन करऽ कि हमरो से सौ-दो सौ रुपया ले-लऽ। जे करे के हओ करऽ!''

''देखा भइया, इ महल्ला के तऽ तू ही धनी व्यक्ति हतूऽ, दोसर केकरा से कहूँ!''

''ठीक हई, देखते हतेऽ, व्यापार अब गमे-गमे ठप भेल जाइत हई। अब पहले जइसन बात न हई।''

''भइआ, उ सब न कह? तोरा तऽ दस हजार देवही के होतओ!''

''ठीक हए, जो कल आफिस में आ जइहे!''

''ठीक है भइया!''

मणिबाबू जब अपने घर के अन्दर प्रवेश करते हैं तो उनकी पत्नी अचानक बोल पड़ती है, "आएँ जी आप बहुत लेट से आए, कहाँ थे? आज 'मनु बाबू' के यहाँ 'बर्थ-डे' है। वहाँ जाना जरूरी है। वे खुद यहाँ आए थे।"

"ठीक है, तुम भी तैयार हो जाओ!"

फिर सपरिवार गाड़ी में बैठकर 'मनु बाबू' के यहाँ चल पड़े। मणिबाबू व्यस्त होते हुए भी सामाजिक काम कर लेते हैं। ये महल्ला, समाज एवं शहर के रीति-रिवाज तथा शादी-ब्याह या बर्थ-डे वगैरह हेतु निमन्त्रण आने पर, वहाँ जरूर जाते हैं। यही कारण है कि पति-पत्नी, समाज के किसी भी व्यक्ति से विमुख नहीं होते। सच कहिए तो यह गुण उन्हें विरासत में प्राप्त हुआ था। यही वजह है कि वे हर मौके पर अपनी पत्नी के साथ, वहाँ दिखलाई पड़ते हैं।

खैर, ये दोनों पति-पत्नी जब 'मनु बाबू' के यहाँ पहुँचे तो, वहाँ इन्हें देखते ही लोग, उनके गाड़ी के पास आकर 'प्रणाम भइया' और 'प्रणाम भाभी' कहकर आदरपूर्वक खड़े हो गए।

"समाचार कइसन हए!"

"ठीक है, भइया! अपने से मिलला हमरा जमाना हो गेल। लगभग दस साल तऽ हो गेल होएत!"

"आजकल तू कहाँ रहइत हते!"

"कि कइयो भइया! रोजी-रोटी के चक्कर में फुरसते न मिलइअ!"

"कभी-कभार तऽ मिल लेवे के चाही? तब न अपनापन बुझाइछइ।"

"ठीक कहेलाऽ भइया।" तब तक उनका लड़का, उनके पास आ गया था। यह देखकर वे उससे बोल पड़े, "बेटा इहे तोहर मणि चाचा हथून। गोर छू के प्रणाम करा।"

"ठीक है...ठीक है, खुश रहा!"

"भइया तोहरे बेटा हाओ। एकरप विआहो कर देलिअई। ऐसो तऽ ई बापो बनगेलकह। घरवा के सबे काम हमरे करेके परइअ। हम चाहेसी कि इस कोनो रोजी-रोटी में लग जाए। आजकल त बैठले हाओ। एकरो अपन फैक्ट्री मैं...!"

"देख अभी तऽ बड़ी मुश्किल हऊ, फिर भी ध्यान रखवौ!" इसी तरह वहां पर के सारे लोग, उन्हें कुछ न कुछ, अपनी बात कहते रहे एवं मणिबाबू सभी को अपने जवाब में 'हाँ' 'हूँ' कहते रहे। बाद में 'बर्थ-डे' का भोज खाकर बारह बजे रात को घर लौटे।

आज मणिबाबू का एक स्वभाव बन गया है—'दरबार लगाने का'। जिस दिन इनका दरबार न लगता या किसी व्यक्ति से इनकी भेंट-मुलाकात नहीं होती, उस दिन वे मायूस हो जाते हैं। जीवन निरर्थक-सा लगता है। जैसे लगता है कि

दरबार ही जीवन है! दूसरे दिन मणिबाबू सुबह आठ बजे 'बेड' से उठे, तो मालूम हुआ कि 'ड्राइंगरूम' में दो-तीन आदमी बैठे हुए हैं। फिर वे मुँह-हाथ धोकर, अपने 'ड्राइंगरूम' में आ गये। 'प्रणाम-प्रणाम' कहते हुए बैठ गए।

"किधर चलला ह।"

"हम एलिअओ हऽ बेटी के शादी करे वास्ते। अपने 'फास्ट' में एक 'रेलवे इंजिनियर' हओ। हमरा मालूम भैल ह कि, ओकरा से तोरा बड़ा जान-पहचान हओ!"

"देखऽ, जान-पहचान तऽ हमरा जरूरे हओ, बाकी उ लड़का बड़ा टेढ़ा हओ। हम ओकरा पास, कए आदमी के लेके गेली, बाकी उ तऽ बाते न करइअ!"

"ठीक है भइया, बात न करतई बाकी ओकरा से एक बार मिले में की हरज!"

"हमरा कोने फरक न परइअ। जब हमरा बोलवे तऽ हम सोचब!"

"ठीक है भइआ, तैयार हो जा न, चले के हओ!"

"अभी तऽ हमरा आफिस जाएके हए। डेढ़ बजे आफिस में आ जइहे। वहीं से चलेव!"

"ठीक है भइया, प्रणाम!"

"ठीक है जो डेढ़ बजे जरूर आ जइहे, न तऽ दोसरा काम में लग जाएव, तऽ तोहर काम पीछे पर जतऊ।' फिर जैसे ही ये आफ़िस में आए तो देखा कि लोगों की जमघट वहाँ लगी हुई है। कुछ लोग बैठे हैं और कुछ लोग बाहर टहल रहे हैं। ऐसा लगा कि वहाँ मेला लगा हो!

❑❑❑

डॉ. सूरज मृदुल

जन्म स्थान : पटना (बिहार)
शिक्षा : बी. काम., एल-एल. बी., एम. बी.ए., पी-एच. डी.
सम्प्रति : स्वतन्त्र पत्रकारिता एवं लेखन
कृतियाँ :
- कवितांजलि
- बैसाखियों के सहारे
- एक टुकड़ा सुख
- रंग-व्यंग्य-तरंग
- द्रवीभूत होते क्षण
- कहानी के करीब
- औरत है महान्
- दुःख पर उपजी सुनहरी धूप
- बंदर बाट की दुनिया
- स्वास्थ्य दर्शन

बाल कृतियाँ :
- कथा अमर शहीदों की
- पुरस्कार

सम्पादन :
- पान पत्रिका
- नालन्दा दर्पण-पत्रिका
- ललित छाया-पत्रिका

आत्मकथ्य : मेरे मन में उपज रहे कई शिलालेख, जब तक किसी रचना की शक्ल कागज पर नहीं ले लेती, तब तक मुझे सकून नहीं मिलता। यही मेरे लिखने का कारण भी है।

सम्पर्क : डॉ. सूरज मृदुल
गुरुद्वारा के सामने, रमना, मुजफ्फरपुर (बिहार)